विश्व-परिचय

विश्व-परिचय

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक

पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

आश्विन १३४४ बँगला संवत् (सन् १९३७)

विश्व-परिचय

द्वितीय संस्करण — — — आश्विन, २००४

मूल्य २)

Printed & Published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

श्रीयुत सत्येन्द्रनाथ वसु,

प्रियवर,

इस पुस्तक को तुम्हारे नाम के साथ युक्त कर रहा हूँ। कहना व्यर्थ है कि इसमें विज्ञान की ऐसी सम्पत्ति नहीं है जो बिना संकोच तुम्हारे हाथों में दी जा सके। इसके सिवा अनधिकार प्रवेश के कारण इसमें बहुत-सी ग़लतियाँ रह गई होंगी, इस आशंका से लज्जा भी अनुभव कर रहा हूँ; बहुत संभव, इसे देकर तुम्हारे सम्मान की रक्षा ही नहीं हो सकी है। प्रमाण्य ग्रन्थों को सामने रखकर मैंने यथा-साध्य निरौनी की है। कुछ काम की चीज़ें भी उखड़ गई हैं। मेरे इस दुःसाहस के दृष्टान्त से यदि कोई मनीषी, जो एक ही साथ साहित्य-रसिक भी हों और विज्ञानी भी, इस अत्यावश्यक कर्तव्यकर्म के लिए तत्पर हों तो मेरा प्रयत्न सफल होगा।

जिन्होंने शिक्षा आरंभ की है, उन्हें शुरू से ही विज्ञान के भांडार में नहीं तो उसके आँगन में प्रवेश करना अत्यावश्यक है। इस स्थान पर विज्ञान का प्रथम परिचय कराने के कार्य में साहित्य की सहायता स्वीकार कर लेने में कोई अगौरव की बात नहीं। यही दायित्व लेकर मैंने कार्य शुरू किया है। लेकिन इसकी जवाबदेही अकेले साहित्य के प्रति ही नहीं है, विज्ञान के प्रति भी है। तथ्य की यथार्थता और उसके प्रकाश करने

के औचित्य के संबंध में विज्ञान थोड़ी-सी त्रुटि भी क्षमा नहीं करता। इस ओर भी मैं यथासम्भव सतर्क रहा हूँ। वस्तुतः मैंने कर्तव्य समझकर ही लिखा है, लेकिन वह कर्तव्य केवल विद्यार्थियों के प्रति ही सीमित नहीं है, स्वयं अपने प्रति भी है। इसे लिखने के कार्य में मुझे अपने आपको भी शिक्षा देते हुए आगे बढ़ना पड़ा है। छात्र-मनोभाव की यह साधना शायद विद्यार्थियों की शिक्षा-साधना के लिए उपयोगी हो भी सकती है।

अपनी कैफ़ियत कुछ विस्तार के साथ ही तुम्हारे सामने देनी पड़ रही है। क्योंकि ऐसा करने से ही इसके लिखने में मेरा जो मनोभाव रहा है वह तुम्हारे निकट स्पष्ट हो सकेगा।

विश्व-जगत् ने अपने अति छोटे पदार्थों को छिपा रखा है और अत्यन्त बड़े पदार्थों को छोटा बनाकर हमारे सामने उपस्थित किया है अथवा नेपथ्य में हटा रखा है। उसने अपने चेहरे को इस प्रकार सजाकर हमारे सामने रखा है कि मनुष्य उसे अपनी सहज बुद्धि के फ्रेम में बैठा सके। किन्तु मनुष्य और चाहे जो कुछ भी हो, सहज मनुष्य नहीं है। वही एक ऐसा जीव है जिसने अपने सहज बोध को ही संदेह के साथ देखा है, उसका प्रतिवाद किया है और हार मानने पर ही प्रसन्न हुआ है। मनुष्य ने सहज शक्ति की सीमा पार करने की साधना के द्वारा दूर को निकट बनाया है, अदृश्य को प्रत्यक्ष किया है और दुर्बोध को भाषा दी है। प्रकाशलोक के अन्तराल में जो अप्रकाश लोक है, उसी गहन में प्रवेश करके मनुष्य

ने विश्व-व्यापार के मूल रहस्य को निरन्तर उद्घाटित किया है। जिस साधना के द्वारा यह सब संभव हुआ है उसके लिए सुयोग और शक्ति पृथ्वी के अधिकांश मनुष्यों के पास नहीं है। फिर भी जो लोग इस साधना की शक्ति और दान से एकदम वंचित रह गये हैं, वे आधुनिक युग के सीमान्त प्रदेश में जाति-बहिष्कृत हो गये हैं।

बड़े वन में वृक्षों के नीचे सूखे पत्ते अपने आप गिर पड़ते हैं और मिट्टी को उपजाऊ बनाते हैं। जिन देशों में विज्ञान की चर्चा होती रहती है वहाँ ज्ञान के टुकड़े टूट-टूटकर निरंतर बिखरते रहते हैं। इससे वहाँ की चित्तभूमि में उर्वरता का जीव धर्म जाग उठा करता है। उसी के अभाव में हम लोगों का मन अवैज्ञानिक हो गया है। यह दीनता केवल विद्या के विभाग में नहीं, कार्यक्षेत्र में भी हम लोगों को अकृतार्थ कर रही है।

मेरे जैसा अनाड़ी जो इस अभाव को थोड़ा-सा भी दूर करने के प्रयत्न में लगा है, इससे वे ही लोग सबसे अधिक कौतूहल अनुभव करेंगे जो मेरे ही जैसे अनाड़ियों के दल में हैं। किन्तु मुझे भी कुछ थोड़ा कहना है। बच्चे के प्रति माता का औत्सुक्य तो रहता है लेकिन डाक्टर की तरह उसे विद्या नहीं आती। विद्या तो वह उधार ले सकती है पर उत्सुकता उधार नहीं ली जा सकती। यह औत्सुक्य सेवा-शुश्रूषा में जिस रस को मिला देता है वह अवहेला की चीज़ नहीं है।

यह कहना ही व्यर्थ है कि मैं विज्ञान का साधक नहीं

हूँ। किन्तु बाल्यकाल से ही विज्ञान का रस आस्वादन करने में मेरे लोभ का अन्त नहीं था। उस समय मेरी अवस्था शायद नौ दस वर्ष की होगी; बीच बीच में रविवार के दिन अचानक सीतानाथ दत्त महाशय आ जाते थे। आज जानता हूँ, उनके पास पूँजी बहुत अधिक नहीं थी किन्तु विज्ञान की दो एक साधारण बातें जब वे दृष्टान्त देकर समझा देते तो मेरा मन आश्चर्य से भर जाता। याद आता है जब उन्होंने पहले-पहल काठ का बुरादा देकर दिखा दिया कि आग पर चढ़ाने से नीचे का गर्म पानी हल्का होकर ऊपर उठता रहता है और ऊपर का ठंडा और भारी पानी नीचे उतरता रहता है, इसी लिए पानी खौलता है, तो अनवच्छिन्न जल में एक ही समय ऊपर और नीचे निरन्तर इतना भेद घट सकता है यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ था। उस आश्चर्य की स्मृति आज भी मन में विद्यमान है। जिस घटना को स्वतः सहज समझकर बिना सोचे बिचारे मान लिया था, वह सहज नहीं है, इस विचार ने शायद पहले-पहल उसी दिन मेरे मन को चिन्तामग्न किया था। इसके बाद अवस्था जब शायद बारह की होगी (यह कह रखना अच्छा है कि कोई कोई आदमी जैसे रंग के अंधे होते हैं अर्थात् रंग नहीं देख सकते वैसे ही मैं तारीख़ का अंधा हूँ—मैं तारीख़ याद नहीं रख सकता) उस समय पूज्य पिता जी के साथ डलहौसी पहाड़ पर गया था। सारा दिन टोकरियों में लदकर शाम को डाकबँगले

तक पहुँचता। पिताजी कुर्सी निकालकर आँगन में बैठ जाते। देखते-देखते, गिरिशृंगों से वेष्टित निविड़ नील अंधकार में जान पड़ता तारिकायें उतर आई हैं। वे मुझे नक्षत्रों की पहिचान करा देते। केवल परिचय ही नहीं, सूर्य से उनकी कक्षा की दूरी, प्रदक्षिणा में लगनेवाला समय और अन्यान्य विवरण मुझे सुना जाते। वे जो कुछ कह जाते उसे याद करके उन दिनों अनभ्यस्त लेखनी से मैंने एक बड़ा-सा प्रबंध लिखा था। रस मिला था, इसी लिए लिख सका था। जीवन में यह मेरी पहली धारावाहिक रचना थी, और वह थी वैज्ञानिक संवादों के आधार पर।

इसके बाद उम्र बढ़ती गई। उन दिनों तक मेरी बुद्धि इतनी खुल गई थी कि अन्दाज़ से अंग्रेजी भाषा समझ सकूँ। सहजबोध्य ज्योतिर्विज्ञान की पुस्तकें जहाँ-कहीं जो कुछ मिलीं उन्हें पढ़ने में कोई कोर कसर नहीं रखी। बीच बीच में गणित-संबंधी दुर्गमता के कारण मार्ग वन्धुर हो उठा था फिर भी उसकी कृच्छ्रता के ऊपर से ही मन को ठेल-ठालकर आगे बढ़ाता गया। इससे मैंने यह बात सीखी है कि जीवन की प्रथम अभिज्ञता के मार्ग में हम जो सब कुछ समझते हों सो बात नहीं है, और सब कुछ स्पष्ट न समझने के कारण हम आगे न बढ़ते हों, यह बात भी नही कह सकते। जल-स्थल विभाग की भाँति ही हम जितना समझते हैं उससे कहीं अधिक नहीं समझते, तो भी काम चल जाता है और हम आनन्द भी पाते

हैं। कुछ अंश में न समझना भी हमें अग्रसर होने के मार्ग में आगे ठेल देता है। जब मैं लड़कों को पढ़ाया करता था तो यह बात मेरे मन में रहती थी। मैंने कई बार बड़ी अवस्था का पाठ्य-साहित्य छोटी उम्र के विद्यार्थियों को पढ़ाया है। उन्होंने कितना समझा है, इसका पूरा हिसाब नहीं लिया; लेकिन यह जानता हूँ कि हिसाब के बाहर भी वे बहुत कुछ समझ लेते हैं, जो निश्चय ही अपथ्य नहीं है। यह बोध परीक्षक की मार्क देनेवाली पेन्सिल के अधिकार का नहीं है किन्तु इसका मूल्य काफ़ी है। अन्ततः मेरे जीवन से यदि इस प्रकार बटोरकर संग्रह की हुई बातें निकाल दी जायँ तो बहुत कुछ जाता रहेगा।

मैं ज्योतिर्विज्ञान की सरल पुस्तकें पढ़ने लगा। उन दिनों इस विषय की पुस्तकें कम नहीं निकली थीं। सर राबर्ट बाल की बड़ी पुस्तक ने मुझे काफ़ी आनन्द दिया है। इस आनन्द का अनुसरण करने की आकांक्षा से निउकोम्बस्, फ़्लामरिय प्रभृति अनेक लेखकों की अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं—बीज और रेशा समेत निगलता गया हूँ। इसके बाद एक बार साहस संचय करके हक्सली की लिखी हुई प्राणितत्त्व सम्बन्धी एक निबन्धमाला शुरू की। ज्योतिर्विज्ञान और प्राणिविज्ञान केवल इन दो विषयों को ही मैं उलटता-पुलटता रहा। इसे पक्की शिक्षा नहीं कह सकते अर्थात् इसमें पांडित्य की कड़ी गँथाई नहीं है। किन्तु निरंतर पढ़ते पढ़ते मन में एक वैज्ञानिक वृत्ति स्वाभाविक हो उठी थी; आशा करता हूँ,

अंधविश्वास की मूढ़ता के प्रति मेरी जो अश्रद्धा है उसने बुद्धि की उच्छृङ्खलता से बहुत दूर तक मेरी रक्षा की है। फिर भी मुझे ऐसा नहीं लगता कि उक्त कारण से कवित्व के इलाके में कल्पना के महल की कोई विशेष हानि हुई है।

आज आयु के अन्तिम पर्व में मन नये प्राकृत तत्त्व—वैज्ञानिक मायावाद—से अभिभूत है। उन दिनों जो कुछ पढ़ा था, उसका सब समझ नहीं सका था, लेकिन फिर भी पढ़ता ही गया। आज भी जो कुछ पढ़ता हूँ उसमें का सब कुछ समझना मेरे लिए संभव नहीं है और अनेक विशेषज्ञ पंडितों के लिए भी ऐसा ही है।

जो लोग विज्ञान से चित्त का खाद्य संग्रह कर सकते हैं वे तपस्वी हैं—मिष्टान्नमितरे जनाः, मैं केवल रस पाता हूँ। इसमें गर्व करने की कोई बात नहीं है, किन्तु मन प्रसन्न होकर कहता है, यथालाभ। यह पुस्तक उस यथालाभ की ही झोली है। मधुकरी वृत्ति का आश्रय करके सात पाँच घरों से इसका संग्रह किया गया है।

पाण्डित्य तो अधिक है ही नहीं, इसलिए उसे अज्ञात बना रखने के लिए विशेष उद्योग नहीं करना पड़ा। प्रयत्न किया है भाषा की ओर। विज्ञान की सम्पूर्ण शिक्षा के लिए पारिभाषिक शब्दों की ज़रूरत है। लेकिन पारिभाषिक शब्द चर्व्य (चबाकर खाये जानेवाले) पदार्थ की जाति के हैं, दाँत जमने के बाद वे पथ्य होते हैं। यह बात याद करके जहाँ तक हो

सका है परिभाषाओं से बचकर सहज भाषा की ओर ही ध्यान दिया है।

इस पुस्तक में एक बात को लक्ष्य करना—इसकी नाव अर्थात् इसकी भाषा सहज ही चल सके, यह कोशिश तो इसमें है परन्तु माल बहुत कम करके हल्का बनाने को मैंने अपना कर्तव्य नहीं माना। दया करके वञ्चित करने को दया करना नहीं कहते। मेरा मत यह है कि जिनका मन अर्धविकसित है, वे जितना स्वभावतः ले सकेंगे, उतना ले लेंगे बाक़ी को अपने आप छोड़ देंगे। लेकिन इसी कारण से उनके पत्तल को प्रायः भोज्यशून्य कर देने को सद्व्यवहार नहीं कहा जा सकता। मन लगाना और कोशिश करके समझने का प्रयत्न करना भी शिक्षा का अंग है, वह आनन्द का ही सहचर है। बाल्यकाल में अपनी शिक्षा का जो प्रयत्न मैंने ग्रहण किया था उस पर से यही मेरी अभिज्ञता है। एक विशेष उम्र में जब दूध अच्छा नहीं लगता था उस समय मैं बड़ों को धोखा देने के लिए दूध को नीचे से ऊपर तक फेनिल करके कटोरा भरने का षड्यंत्र किया करता था। जो लोग बालकों के पढ़ने की किताबें लिखा करते हैं, देखता हूँ, वे भी काफ़ी मात्रा में फेन की व्यवस्था किया करते हैं। यह बात वे भूल जाते हैं कि ज्ञान का जैसा आनन्द है, वैसा ही उसका मूल्य भी है; लड़कपन से ही उस मूल्य के चुकाने में कसर करने से यथार्थ आनन्द के अधिकार पाने में भी कसर रह जाती है। चबाकर खाने से जहाँ

एक तरफ़ दाँत मज़बूत होते हैं वहाँ दूसरी तरफ़ भोजन का पूरा स्वाद भी मिलता है। यह पुस्तक लिखते समय यथासाध्य इस बात को भूलने नहीं दिया है।

श्रीमान् प्रमथनाथ सेनगुप्त एम० एस-सी० तुम्हारे ही पुराने विद्यार्थी हैं। वे शान्तिनिकेतन विद्यालय में विज्ञान के अध्यापक हैं। पहले मैंने इस पुस्तक के लिखने का कार्य उन्हीं को सौंपा था। धीरे धीरे हटते हटते सारा भार अन्त में मेरे ऊपर ही आ पड़ा। वे अगर शुरू न करते तो मैं समाधा न कर सकता। इसके सिवा अनभ्यस्त रास्ते पर अव्यवसायी के साहस से काम भी नहीं चलता। उनके पास से मुझे भरोसा भी मिला है और सहायता भी मिली है।

अलमोड़ा आकर, एकान्त में, इसका लिखना पूरा कर सका हूँ। मेरे स्नेहास्पद मित्र वशी सेन को पाने से एक अच्छा अवसर भी मिल गया। उन्होंने यत्नपूर्वक यह सारी रचना पढ़ी है। पढ़कर प्रसन्न हुए हैं, यही हमारे लिए सबसे बड़ा लाभ है।

मेरी अस्वस्थता की हालत में स्नेहास्पद श्रीयुक्त राजशेखर वसु महाशय ने बड़े यत्न के साथ प्रूफ़ संशोधन करके पुस्तक प्रकाशित करने के कार्य में मुझे विशेष सहायता दी। इसलिए उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

शान्तिनिकेतन
२ आश्विन, १३४४

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक का वक्तव्य

विश्व-परिचय कवि की भाषा में लिखी हुई वैज्ञानिक पुस्तक है। बँगला में ८-१० महीनों के भीतर पुस्तक चार बार छप चुकी। प्रतिबार लेखक ने इसमें संशोधन और परिवर्धन किये हैं। यह अनुवाद जब आधा छप चुका था तभी मूल पुस्तक चौथी बार संस्कृत और परिवर्धित हुई और अनुवाद की छपाई समाप्त होने के पहले ही छप गई। इसी लिए इस सबसे नये संस्करण का उपयोग अनुवाद में नहीं किया जा सका।

विश्व-परिचय बालकों के लिए लिखा गया है, परन्तु प्राप्त-वयस्क विद्वानों को भी इसमें कम आनन्द नहीं मिलेगा। अनुवादक को अनुवाद करते समय भाषा की सरलता और उसका माधुर्य दोनों का सामंजस्य करते हुए चलना पड़ा है। कभी कभी निरुपाय होकर दोनों में से किसी एक का मोह छोड़ना भी पड़ा है। भाषा के माधुर्य का मोह छोड़ने में उसे प्रायः ही कठिनाई में पड़ना पड़ा है।

एक बात हिन्दी के पाठकों को इसमें नई जान पड़ सकती है। मूल लेखक बँगला में प्रश्नवाचक और विस्मयादि-बोधक चिह्नों का प्रयोग बहुत कम करते हैं। उनका कहना है कि अंग्रेज़ी से इन चिह्नों को हमें सोच-समझकर ही ग्रहण करना चाहिए।

हमारी भाषाओं के कहाँ, क्या आदि शब्द अंग्रेज़ी के which आदि जैसे द्व्यर्थक नहीं हैं। उनमें स्वयं प्रश्न का भाव है। इसी लिए अंग्रेज़ी में जब इन शब्दों के लिए प्रश्नवाचक चिह्न दिये जाते हैं तब तो ठीक है, पर हिंदी बँगला आदि भाषाओं में प्रश्न का चिह्न देना निरर्थक है। अनुवाद में भी इस युक्ति को स्वीकार कर लिया गया है।

सूची

विश्व-परिचय

परमाणुलोक

हमारा सजीव शरीर कई बोध या समझ की शक्तियों को लेकर पैदा हुआ है, जैसे देखने का बोध, सुनने का बोध, सूँघने का बोध, चखने का बोध और छूने का बोध। इन्हीं को हम अनुभूति कहते हैं। इनके साथ हमारा अच्छा-बुरा लगना और हमारे सुख-दुःख गुँथे हुए हैं।

हमारी इन अनुभूतियों की सीमा बहुत अधिक नहीं है। हम बहुत थोड़ी दूर तक ही देख सकते हैं और बहुत कम बातें सुन सकते हैं। अन्यान्य बोध-शक्तियों की दौड़ भी बहुत दूर तक नहीं है। इसका मतलब यह है कि हम जितनी शक्ति का सम्बल लेकर आये हैं वह इसी हिसाब से मिली है कि हम इस पृथ्वी पर अपने प्राण बचा रखें।

जिस नक्षत्र से पृथ्वी का जन्म हुआ है और जिसकी ज्योति इसके प्राणों का पालन कर रही है वह है सूर्य। इस सूर्य ने हमारे चारों ओर प्रकाश का पर्दा टाँग दिया है। पृथ्वी के सिवा इस विश्व में और भी कुछ है, यह बात वह देखने नहीं देता। किन्तु दिन समाप्त होता है, सूरज डूबता है, आलोक का पर्दा

हट जाता है, और अन्धकार को छापकर असंख्य नक्षत्र निकल पड़ते हैं। तब हम समझ सकते हैं कि इस विश्व की चौहद्दी पृथ्वी को छोड़कर बहुत दूर तक चली गई है। किन्तु केवल अनुभूतियों के बल पर हम यह नहीं समझ सकते कि यह दूरी कितनी है।

इस दूरी के साथ हमारा एकमात्र योग आँखों के देखने से है। वहाँ से कोई आवाज़ नहीं आती, क्योंकि आवाज़ का बोध हवा से होता है। यह हवा चादर की तरह पृथ्वी पर लिपटी हुई है। हवा पृथ्वी पर ही शब्द उत्पन्न करती है और उसकी तरंगों को इधर उधर चलाया करती है। पृथ्वी के बाहर घ्राण (गंध) और स्वाद का कोई अर्थ ही नहीं होता। हमारे स्पर्श-बोध में गर्मी और सर्दी अनुभव करने का एक बोध है। पृथ्वी के बाहर इस बोध का संबंध कम से कम एक जगह काफ़ी अधिक है। सूर्य से धूप आती है और धूप से गर्मी। इस गर्मी से हमारे प्राण बचे हुए हैं। ऐसे भी नक्षत्र हैं जो सूर्य से लाखों गुना अधिक गर्म हैं पर उनकी गर्मी हमारे बोध तक नहीं पहुँचती। लेकिन सूर्य को तो हम पराया नहीं कह सकते। जिन असंख्य नक्षत्रों से यह विश्व-ब्रह्माण्ड बना है, सूर्य उनमें हमारा सबसे अधिक 'अपना' है। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि सूर्य पृथ्वी से है बहुत दूर। कम दूर नहीं, नौ करोड़ तीस लाख मील दूर। सुनकर चौंक उठने से काम नहीं चलेगा। जिस ब्रह्माण्ड में हम रह रहे हैं उसमें यह दूरी नक्षत्र-

लोक की सब दूरियों से निचले दर्जे की है। कोई भी दूसरा नक्षत्र इससे अधिक नज़दीक नहीं है।

इतनी दूरी की बात सुनकर हमारा मन चौंक उठता है, क्योंकि जल और मिट्टी से बना हुआ यह पिंड अर्थात् यह पृथ्वी बहुत ही छोटी है। पृथ्वी की सबसे बड़ी रेखा अर्थात् उसकी विषुवरेखा के कटिवेष्टन का रास्ता सिर्फ २५ हज़ार मीलों का है। विश्व के साथ हमारा परिचय ज्यों ज्यों बढ़ता जायगा त्यों त्यों हम देखेंगे कि संसार के बृहत्त्व और दूरत्व की सूची में यह पचीस हज़ार की संख्या निहायत मामूली है। यह पहले ही कहा गया है कि हमारी बोध-शक्ति की सीमा बहुत छोटी है। जिस दूरी को लेकर हमें सर्वदा कारबार करना पड़ता है वह तो और भी थोड़ी है। किन्तु हमारे प्राणधारण का प्रयोजन उसी में समाप्त हो जाता है और बहुत कुछ बच भी रहता है। इसी मामूली दूरी के भीतर ही हमारे देखने और चलने फिरने का लेखा-जोखा निर्दिष्ट है।

लेकिन जब पर्दा उठा तो हमारी अनुभूति की इस मामूली सीमा के भीतर ही बृहत् विश्व ने नितान्त छोटा बनकर एक हल्के से इशारे से अपने आपको प्रकट किया, अगर वह ऐसा न करता तो हमारा जानना होता ही नहीं, क्योंकि बड़ी चीज़ को देख सकने लायक़ आँख हमारे पास नहीं है। अन्य जीवों ने इतना-सा देखने को ही मान लिया, उनकी अनुभूति की पकड़ में जितना कुछ आ गया उतने से ही वे सन्तुष्ट हो गये लेकिन

मनुष्य को सन्तोष नहीं। इन्द्रिय-बोध ने वस्तु का ज़रा-सा आभासमात्र दिया। किन्तु मनुष्य की बुद्धि की पहुँच उसकी बोध-शक्ति की अपेक्षा बहुत अधिक है। संसार में जितनी पहुँच हो सकती है, सबके साथ दौड़ लगाने की स्पर्द्धा उसमें है। वह (बुद्धि) इस विराट् जगत् की विराट् पैमाइश की ख़बर लेने निकल पड़ी, अनुभूति ने बच्चों को फुसलानेवाली जो अफ़वाह उड़ा रखी थी उसे उसने अस्वीकार कर दिया। नौ करोड़ तीस लाख मीलों को हम किसी प्रकार अनुभव नहीं कर सकते, किन्तु फिर भी बुद्धि हार माननेवाली नहीं; वह हिसाब लगाने बैठ गई।

बाहर के विश्व लोक की बात तब तक छोड़ दी जाय, जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं उससे अधिक निकट तो और कुछ नहीं है। तो भी इसके समस्त अंगों को एक साथ देख सकना हमारे बोध के लिये असम्भव है। किन्तु एक छोटे से ग्लोब पर यदि उसका मानचित्र अंकित देखें तो पृथ्वी को समग्र रूप से जानने की एक मामूली नींव पड़ जाती है। आयतन की दृष्टि से यह ग्लोब पृथ्वी के कई हज़ार हिस्सों में से एक हिस्सा है। हम अन्यान्य बोधों को छोड़कर केवलमात्र दृष्टिबोध की खरोंच से खुरचा हुआ परिचय ही इसमें पाते हैं। विस्तारित विवरण के हिसाब से देखा जाय तो यह परिचय एकदम पोला है। अधिक देखने की शक्ति हममें नहीं है, इसी लिए इसे छोटा करके ही देखना पड़ा।

प्रतिदिन रात में इस विश्व को छोटा करके हमारे सामने रखा जाता है, मानो उसे हमारे सिर के ऊपर आकाश रूपी ग्लोब में दिखाया जाता है। दृष्टिबोध के सिवा और कोई भी बोध इसमें स्थान नहीं पाता। जिसकी बात सोचने से भी मन अभिभूत हो जाता है उसी इतने विराट् विश्व को दिक्-चक्रवाल से आबद्ध इस छोटे से आकाश में बंद करके हमारे सामने रख दिया गया है।

कितना छोटा करके रखा गया है, इस बात का ज़रा-सा अन्दाज़ा लगाने के लिए सूर्य का दृष्टान्त मन में लाना होगा। स्वभावतः ही हम जितनी बड़ी चीज़ों को जान या अनुभव कर सकते हैं उनमें सबसे बड़ी है यह पृथ्वी। इसे हम टुकड़ा टुकड़ा करके ही देख सकते हैं। फिर भी सूर्य इस पृथ्वी से चौदह लाख गुना बड़ा है। इतना बड़ा सूर्य आकाश के एक किनारे सोने की एक थाली-जैसा दिखाई देता है। सूर्य के भीतर होनेवाले भीषण उथल-पुथल की ख़बर जब मालूम होती है और उसके बाद जब देखता हूँ कि प्रातःकाल हमारे आम के बग़ीचे के पीछे वह सोने की पहिया (सूर्य) धीरे धीरे ऊपर उठती है, जीव-जन्तु और वृक्ष-लतायें आनन्दित हो उठती हैं; तब सोचा करता हूँ, हमें किस प्रकार भुला रखा गया है। हमसे कह दिया गया है कि तुम्हारे जीवन के कारबार में इस से अधिक जानने की कोई ज़रूरत नहीं। और अगर हम भुलाये न गये होते तो जीते भी कैसे। वह सूर्य अपने विराट् स्वरूप

में जो-कुछ है, वह यदि हमारी अनुभूति के थोड़ा भी निकट आता तो हम मुहूर्त्त भर में लुप्त हो जाते। यह तो हुई सूर्य की बात। इस सूर्य से और भी अनेक-गुना बड़े और भी करोड़ों नक्षत्र हैं। उन्हें हम प्रकाश के कई छोटे छोटे बिन्दुओं के समान देख रहे हैं। जिस दूरत्व के भीतर नक्षत्र छितराये हुए हैं, सोचकर उसका कोई कूल-किनारा नहीं पाया जाता। जिस आसमान में विश्व जगत् का यह डेरा है वह कितना बड़ा है, इसकी धारणा हम एक और तरह से कर सकते हैं। हमारे ताप बोध के पास पृथ्वी के बाहर से एक बहुत बड़ी खबर बड़े जोरों के साथ आ रही है, वह है धूप की गर्मी; यह खबर नौ करोड़ तीस लाख मील दूर की है। लेकिन आकाश के कोने-कोने में करोड़ करोड़ नक्षत्र फैले हुए हैं, इनमें से कई तो सूर्य से भी लाखों गुना अधिक गर्म हैं। किन्तु हमारे सौभाग्य-वश उनका सम्मिलित उत्ताप रास्ते में ही इस प्रकार मर जाता है कि विश्व-व्यापी इस अग्नि-काण्ड से हमारा आकाश दुःसह नहीं हो जाता। कितनी दूरी का है यह रास्ता, कितना विशाल है यह आकाश। ताप की अनुभूति को स्पर्श करनेवाली नौ करोड़ मीलों कि दूरी इसके सामने नितान्त तुच्छ है। बड़े बड़े यज्ञों में ब्राह्मण-भोजन के लिए जो चूल्हे जलाये जाते हैं उनके पास बैठना सहज नहीं है, लेकिन सबेरे दस बजे के आस-पास शहर के रसोईघरों में जो आग जलती है उसकी गर्मी विशाल आकाश में फैल जाती है, इसी लिए हम शहर में वास कर सकते हैं। नहीं

तो सब आँच यदि इकट्ठी हो जाती तो हमारा वास करना ही मुश्किल हो जाता। नक्षत्र-लोक की बात भी कुछ ऐसी ही है। वहाँ की आग की आँच जितनी भी प्रचण्ड क्यों न हो उसके चारों ओर का आकाश और भी बहुत विशाल है।

इस विराट् दूरी से भी नक्षत्रों के अस्तित्व का समाचार कौन ले आता है। सहज उत्तर है प्रकाश। किन्तु प्रकाश तो चुपचाप बैठकर ख़बर नहीं सुना जाता, वह डाकहरकारे की तरह पीठ पर ख़बर लेकर दौड़ता चलता है। यह विज्ञान का एक ज़बर्दस्त आविष्कार है। चलना भी मामूली चलना नहीं, ऐसी तेज़ चाल विश्व-ब्रह्माण्ड में किसी दूसरे को नसीब नहीं। हम लोग इस छोटी पृथ्वी के आदमी हैं इसी लिए अब तक जगत् की सबसे बड़ी तेज़ चाल की बात जानने का सुयोग हमें नहीं मिला। एक दिन यह ख़बर भी विज्ञानियों के आश्चर्यजनक करामात-वाले यंत्र में पकड़ गई—यह प्रकाश एक सेकेंड में एक लाख छियासी हज़ार मील के वेग से दौड़ता है। यह एक ऐसा प्रचंड वेग है जो अंक में तो लिख दिया जा सकता है, लेकिन मन में नहीं लाया जा सकता, जिसकी बुद्धि से तो परीक्षा होती है, लेकिन अनुभव से नहीं। प्रकाश की इस तेज़ दौड़ को अनुभव से समझने योग्य स्थान इस छोटी-सी पृथ्वी पर कहाँ है। इस थोड़ी-सी सँकरी जगह में उसके चलने को हम नहीं चलने के समान ही देखते आ रहे हैं। परीक्षा करने योग्य स्थान महाशून्य में ही मिल सकता है। सूर्य उस महाशून्य में

जितनी दूरी पर वर्तमान है वह जितने करोड़ मील भी क्यों न हो, ज्योतिष्क लोक के पैमाने से बहुत अधिक नहीं है।

इसलिए इस दूरत्व के भीतर अपेक्षाकृत छोटे माप से मनुष्य ने प्रकाश का दौड़ना देखा। ख़बर मिली कि इस शून्य को पार करके पृथ्वी तक सूर्य के प्रकाश के आने में साढ़े आठ मिनट समय लग जाता है। अर्थात् सूर्य जिस समय हमारे दृष्टि तक उपस्थित हुआ, वास्तव में उससे साढ़े आठ मिनट पहले ही आ गया था। इस आगमन की ख़बर देने में प्रकाश नामक हरकारे को आठ मिनट के क़रीब समय लग गया। इतनी देरी से कुछ विशेष नुक़सान नहीं, यह तो प्रायः ताज़ी खबर ही मिली है। किन्तु सौरजगत् के सबसे नज़दीक जो नक्षत्र है, अर्थात् नक्षत्र-लोक में जिसे हम अपने मुहल्ले का पड़ोसी कह सकते हैं, उसने जब ख़बर दी कि 'देखो, मैं यहाँ हूँ', तो उसकी यह ख़बर यहाँ तक पहुँचा देने में प्रकाश को प्रायः चार साल से भी अधिक समय लग गया। अर्थात् अभी अभी जो ख़बर मिली वह चार साल की बासी है। यही लकीर खींच दी जाती तो काफ़ी हो जाता किन्तु और भी अधिक दूरी पर नक्षत्र हैं जहाँ से प्रकाश के आने में लाखों बरस लग जाते हैं। आकाश में प्रकाश के इस आवागमन की खबर पाकर विज्ञान के सामने एक प्रश्न उठा—इसके चलने का ढंग कैसा है। यह भी एक अचरज की बात है। जवाब मिला है कि उसका चलना अत्यन्त सूक्ष्म तरंग की तरह है। फिर भी

बहुत मग़ज़पच्ची करके भी कुछ समझा नहीं जा सका है कि यह तरंग है किस चीज़ की, केवल प्रकाश के व्यवहार से इतना निश्चित जान लिया गया है कि है वह तरंग ही। लेकिन मनुष्य के मन को हैरान करने के लिए साथ ही साथ एक और भी जुड़वाँ समाचार अपनी तमाम गवाही साखी के साथ हाज़िर हुआ, उसने ख़बर दी कि प्रकाश असंख्य ज्योतिष्कण लिये हुए है; अति क्षुद्र झींसी के कणों की तरह उसका वर्षण हो रहा है। इन दो परस्पर विरुद्ध समाचारों का मिलन कहाँ होता है यह बात अब भी निश्चित नहीं हो सकी है। इससे अधिक अचरज में डालनेवाली एक परस्पर विरुद्ध बात और है। वह यह कि, बाहर जो कुछ हो रहा है वह एक ऐसा कुछ है जो तरंग और वर्षा है, लेकिन भीतर जो कुछ हम पाते हैं वह न यह है न वह; उसे हम प्रकाश कहते हैं;—इसका मतलब क्या है, सो बात कोई पंडित अब तक बता नहीं सका है।

जिसे सोचा नहीं जा सकता, जो देखने-सुनने के बाहर है, उसके विषय में इतनी सूक्ष्म और इतनी विशाल ख़बर मिली कैसे, यह सवाल उठ सकता है। फ़िलहाल यह मान लेने के सिवा उपाय नहीं है कि इसके लिए निश्चित प्रमाण हैं। जो लोग ये प्रमाण संग्रह कर रहे हैं उनकी ज्ञान की तपस्या असाधारण है, उनके सन्धान का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। उनकी बात को जाँच पड़ताल कर लेने लायक़ विद्या हममें से बहुतों के पास नहीं है। थोड़ी विद्या लेकर अविश्वास करके हमें स्वयं ठग जाना पड़ेगा।

प्रमाण के रास्ते खुले ही हुए हैं। उस रास्ते चलने की साधना यदि करोगे, शक्ति यदि होगी, तो एक दिन इन सब बातों को लेकर इन सब मामलों में सवाल-जवाब सहल ही हो सकेगा।

तब तक प्रकाश की तरंगों की बात ही समझ ली जाय। ये तरंगें केवल एक ही तरंग की धारा नहीं हैं। इनके साथ अनेक तरंगों ने दल बाँधा है। कुछ तो दिखाई दे जाती हैं, और कुछ नहीं। यहाँ यह कह रखना ज़रूरी है कि जो प्रकाश दिखाई नहीं देता उसे बोलचाल की भाषा में प्रकाश नहीं कहते। किन्तु दिखाई दे या न दे, किसी एक शक्ति का इस प्रकार तरंगित रूप में चलना ही जब दोनों का स्वभाव है तो विश्वतत्त्व की पुस्तक में उनका (न दिखानेवाली तरंगों का) अलग नाम देना अनुचित है। बड़ा भाई ख़ूब नामी गरामी है और छोटे भाई को कोई नहीं जानता, तौभी वंशगत ऐक्य के कारण दोनों की उपाधि एक ही होती है, यह भी वैसा ही समझना चाहिए।

प्रकाश की तरंगों के अपने दल की एक और भी तरंग है। इसे हम आँखों से नहीं देखते, स्पर्श से समझते हैं। यह है ताप की तरंग। सृष्टि के कार्य में उसका ख़ूब प्रताप है। इसी तरह के प्रकाश की तरंग की जात के कई पदार्थ हैं जिनमें कई स्पर्श से जाने जाते हैं, कई स्पर्श से समझे जाते हैं, किसी किसी को हम स्पष्ट प्रकाश के रूप में जानते हैं और साथ ही ताप के रूप में अनुभव भी करते हैं और किसी को देख भी नहीं

सकते और स्पर्श से भी नहीं समझ सकते। हमारे निकट प्रकाशित-अप्रकाशित इन प्रकाश-तरंगों की भीड़ को यदि एक ही नाम देना हो तो उसे तेज कहा जा सकता है। विश्वसृष्टि के आदि मध्य और अन्त में इसी तेज का कम्पन विभिन्न अवस्थाओं में छिपा हुआ है। पत्थर हो या लोहा, बाहर से देखने से जान पड़ता है कि उनके भीतर कोई हिलना-डुलना या आन्दोलन नहीं है। वे मानो स्थिरता की आदर्श-भूमि हैं। किन्तु यह बात सिद्ध हो चुकी है कि उनके अणु-परमाणु अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ जिन्हें हम देख नहीं सकते, लेकिन जिनके मिलित होने से ये बने हैं, सर्वदा भीतर ही भीतर काँप रहे हैं। जब ये ठंडे होते हैं तब भी काँपते हैं और कँपकँपी जब और भी तेज़ हो जाती हैं तब गर्म होकर बाहर से ही हमारी बोध-शक्ति के निकट प्रत्यक्ष हो जाती है,—हम इसे अनुभव करने लगते हैं। आग में जलाने से लोहे के परमाणु काँपते-काँपते इतने अधिक अस्थिर हो उठते हैं कि उनकी उत्तेजना अधिक देर तक छिपी नहीं रहती। उस समय कम्पन की तरंग हमारे शरीर की स्पर्श नाड़ी को धक्का मार कर उसके भीतर जिस ख़बर को फैला देती है, उसे हम गर्मी कहते हैं। वस्तुतः गर्मी हमें चोट पहुँचाती है। प्रकाश चोट पहुँचाता है आँखों में और गर्मी शरीर में।

बचपन में एक दिन मास्टर साहब ने दिखाया था कि लोहे का टुकड़ा अग्नि में तपाने पर पहले गर्म होता है फिर ख़ूब लाल और अन्त में उज्जवल स्वेत हो जाता है। मुझे ख़ूब याद आ रहा

है कि उस दिन इस बात ने मुझे ख़ूब सोचने को बाध्य किया था। मैं सोच रहा था कि आग तो कोई एक द्रव्य नहीं है जो लोहे के साथ बाहर से मिलकर लोहे के द्वारा इस प्रकार के नाना प्रकार के भाव बतला दे सके। लेकिन इतने दिन बाद आज सुनता हूँ कि और भी अधिक ताप देने से यह लोहा गैस हो जाता है। और यह सब कुछ इसी जादूगर ताप की कारसाज़ी है, जो सृष्टि के आरंभ से लेकर आज तक चल रही है।

सूर्य का प्रकाश सफ़ेद है। इस सफ़ेद रंग में सात भिन्न-भिन्न रंग मिले हुए हैं। मानो कोई सतरंगा साज है जो समेट लेने पर सादा दिखता है और फैला देने पर सतरंगा। पुराने जमाने में झाड़-फानूस का प्रचार था, बिजली बत्ती के प्रचार से इसका अब देश-निकाला हो गया है। इस झाड़ में तिकोने काँच के टुकड़े झूला करते थे। इस तरह के तिकोने काँच के टुकड़ों का गुण यह है कि उनके भीतर से यदि धूप निकले तो उसके सात रंगों के प्रकाश टूटकर छितरा जाते हैं। और एक के बाद दूसरे रंग इस क्रम से बिछ जाते हैं; बैंगनी (violet) अति नील (indigo), नील (blue), हरा (green), पीला (yellow), नारंगी (orange) और लाल (red)। ये सात रंग आँखों से देखे जाते हैं; पर इनके दोनों किनारों पर और भी भिन्न भिन्न प्रकार के प्रकाश की तरंगें उठा करती हैं, जो हमारी सहज चेतना की पकड़ में नहीं आतीं। इस जातिका जो तेज बैंगनी रंग के उस पार है उसे ultra-violet light

कहते हैं। सहज भाषा में कह सकते हैं—बैंगनी-पारका प्रकाश। और जो प्रकाश लाल के इलाके में नहीं आ सका, बल्कि उसके उधर ही रह गया है उसे कहते हैं, infra-red light इसे लाल-पार का प्रकाश कह सकते हैं। सर विलियम हर्शल एक बहुत बड़े ज्योतिषी थे। उन्होंने तिकोने काँच के टुकड़े के भीतर से परीक्षा करके प्रकाश की सतरंगी छटा देखी थी। उन्होंने ताप-माप को नली लेकर एक एक रंग के पास रखकर देखा। फिर लाल रंग पार करके नली को रंग रहित अंधकार स्थान के पास ले गये। लेकिन वहाँ भी गर्मी रुकती नहीं दिखाई दी। उस समय समझा गया कि इस अंधकार में छिपा हुआ और भी कोई प्रकाश है। इसके बाद एक जर्मन रसायनी आये। एक फोटोग्राफी का प्लेट लेकर ये परीक्षा में जुट गये। इस प्लेट पर बैंगनी से लेकर लाल तक सात रंगों की ख़बर मिली। फिर उन्होंने बैंगनी पार करके अंधकार स्थान की जाँच की। आख़िरकार जो चीज़ आँख की पकड़ में नहीं आई थी वह प्लेट की पकड़ में आ गई। फोटोग्राफी के प्लेट में बैंगनी-पार-के प्रकाश का प्रभाव काफ़ी प्रबल होता है। एक बार ऐसा जान पड़ा था कि ये अ-देख प्रकाश रंगीन दल के ही पार्श्वचर हैं जो अँधेरे में जा पड़े हैं। किन्तु ज्यों-ज्यों इस गुप्त प्रकाश की खोज आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों सतरंगे-दल का आसन छोटा होता गया। विज्ञान की पैमाइश में प्रकाश की सीमा आज सतरंगे राजा के देश से सौ गुना अधिक बढ़ गई है। लाल-

पार-के प्रकाश की ओर क्रमशः जो तरंग दीख पड़ी है वही तरंग आज उस आकाश-वाणी को ढोती चलती है, जिसे 'रेडियो-वार्ता' कहते हैं। इसी तरह बैंगनी-पार की ओर सुप्रसिद्ध रैन्ट-गेन प्रकाश प्रकट हुआ जिसकी सहायता से देह के चमड़े का पर्दा भेदकर भीतर का हाड़ दिखाई देता है।

प्रकाश से कुछ नक्षत्रों के अस्तित्व की ही ख़बर नहीं मिलती बल्कि उसकी छाती फाड़कर मनुष्य ने यह ख़बर भी वसूल कर ली है कि इन नक्षत्रों में कौन-कौन-से पदार्थ हैं। यह वसूली कैसे हुई,ज़रा समझा के कहा जाय—

तिकोने काँच के भीतर से जब सूर्य का सफ़ेद प्रकाश निकलता है तो उसके एक के बाद दूसरे सात रंगों का परिचय मिल जाता है। लोहा वगैरह कठोर पदार्थ काफ़ी गर्म होकर जब जल उठते हैं और उनका रंग जब क्रमशः सफ़ेद हो जाता है तो इस स्वेत प्रकाश को भाग करने पर सातों रंगों की छटा एक दूसरे से सटी हुई दिखने लगती है। उनके भीतर कोई फाँक नहीं रहता। किन्तु लोहा को गर्म करते-करते जब वह इतना गर्म हो जाता है कि गैस बन जाय तो फिर तिकोने काँच के भीतर से उसके प्रकाश को भाग करने से वर्णच्छटा में अवि-च्छिन्न प्रकाश नहीं मिलता। अलग अलग केवल उज्जवल रेखाएँ और उनके बीच बीच में प्रकाशहीन ख़ाली जगहें दिखती हैं। इस प्रकार रेखाओं का जो चिह्न पड़ जाता है उसे 'वर्णलिपि' नाम दिया जा सकता है।

इस लिपि में देखा गया है कि दीप्त गैसीय अवस्था में प्रत्येक पदार्थ के प्रकाश की वर्णच्छटायें अलग अलग हैं। नमक में सोडियम नामक एक मौलिक पदार्थ पाया जाता है, ताप दे-दे-कर उसे गैस कर दिया जाय तो उसकी वर्णलिपि में उसके प्रकाश के भीतर ख़ूब नज़दीक ही नज़दीक दो पीली रेखाएँ दिखाई पड़ती हैं, और कोई रंग नहीं दिखाई देता। सोडियम के सिवा अन्य किसी पदार्थ की वर्णच्छटा में ठीक उसी स्थान पर उसी प्रकार की दो लकीरें नहीं मिलतीं। इसलिए उस प्रकार की दो लकीरें जहाँ कहीं के भी गैस में मिलें, समझ लेना होगा कि निश्चय ही वहाँ सोडियम मौजूद है।

लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि देखा जाय वर्णच्छटा में सोडियम गैस की इन दो उज्ज्वल पीत रेखाओं की चोरी हो गई है और उनकी जगह पर काले धब्बे दिख रहे हैं। विज्ञानी कहते हैं कि किसी उत्तप्त गैसीय पदार्थ का प्रकाश उसी गैस के अपेक्षाकृत ठंडे स्तर को भेद करके जाता है तो नीचे का ठंडा स्तर उसे पूरी तौर से सोख लेता है। लेकिन यह बात नहीं है कि इस प्रकाश के अभाव में ही कुछ काले दागों की सृष्टि हुई हो। वस्तुतः जो गैस इस प्रकाश को रोकता है वह भी अपने उत्ताप के मुताबिक प्रकाश बिखेर देता है, लेकिन उत्ताप की कमी के कारण इसका प्रकाश कुछ मलिन होता है। यही मलिन प्रकाश वर्णच्छटा में उज्ज्वल प्रकाश के पास रहने के कारण काला मालूम होता है।

जितने भी मौलिक पदार्थ हैं, उनका प्रकाश तोड़कर प्रत्येक की वर्णच्छटा का फर्द तैयार कर लिया गया है। इस वर्ण भेद की तुलना करने से ही वस्तु भेद प्रकट हो जायगा, फिर वह जहाँ कहीं भी क्यों न हो। हाँ, गैसीय अवस्था में उसका रहना ज़रूरी है।

पृथ्वी पर जिन ९२ मौलिक पदार्थों की ख़बर मिली है, सूर्य में उन सबका रहना उचित है; क्योंकि पृथ्वी तो सूर्य के देह से उत्पन्न हुई है। पहली परीक्षा में केवल ३६ ही पदार्थ मिले थे, बाक़ी का क्या हुआ, इस प्रश्न को भारतीय विज्ञानी मेघनाद साहा ने हल किया है। नया अनुसन्धान-मार्ग निकालकर उन्होंने सूर्य में और कई मौलिक पदार्थों का पता लगाया है। उनके सुझाये रास्ते से प्रायः सभी मौलिक पदार्थों की ख़बर मिल गई है। आज भी जो लापता हैं उनका संवाद पृथ्वी का वायुमण्डल बीच रास्ते में ही रोक लेता है।

सब रंग मिलकर सूर्य का रंग सादा है फिर क्या कारण है कि हम नाना वस्तुओं में नाना रंग देखते हैं। बात यह है कि वस्तुएँ सब रंगों को अपने भीतर ग्रहण नहीं कर सकतीं, किसी किसी को बिला उज्र बाहर बिदा कर देती हैं। वह लौटाया हुआ रंग ही हमारी आँखों का लाभ है। मोटा ब्लाटिंग् पेपर जिस रस को सोख लेता है वह किसी का भोग्य नहीं होता, जिस रस को वह ले नहीं लेता वही बचा हुआ जूँठा रस हमारा प्राप्य है। यह भी ऐसा ही है। चुन्नी सूर्य की किरणों

के सभी रंगों को मान लेती है, फिरा देती है केवल लाल रंग को। उसके इस त्याग के दान से ही चुन्नी की इतनी शुहरत है। जो (रंग) उसने आत्मसात् कर लिया है उसकी कोई ख्याति नहीं। चुन्नी केवल लाल रंग को ही क्यों नहीं ग्रहण करती है और नीलम का नील रंग के ऊपर ही इतना विकट वैराग्य क्यों है, इस प्रश्न का जवाब उनके परमाणुओं की दुनिया में छिपा हुआ है। सूर्य के रंगों की तरंगों को पके केश लौटा देते हैं इसी लिए वे सफ़ेद दिखते हैं और काले केश किसी रंग को नहीं लौटाते इसी लिए वे काले हैं। जगत् की सभी चीज़ें अगर सूर्य के सब रंगों को ग्रहण कर जातीं, आत्मसात् कर लेतीं, तो कृपणों की वह दुनिया एकदम काली दिखाई देती अर्थात् दिखाई ही नहीं देती। मानो पोस्टमास्टर चिट्ठी बाँटनेवाले सातों हरकारों को क़ैद कर लेता। और यदि ये पदार्थ किसी भी प्रकाश को ग्रहण न करते तो सब कुछ सफ़ेद दिखता, और उस एकाकार जगत् में सब पदार्थों का भेद ही मिट जाता। मानो सातों हरकारों की सब चिट्ठियाँ रस्सी की तरह बटकर एक कर दी जातीं और कोई स्वतंत्र ख़बर ही न मिलती। सबको एक ही चेहरे में देखने को देखना नहीं कहा जा सकता, हम टूटे प्रकाश के मेल-जोल में चीज़ों को देखते हैं।

पके केश सफ़ेद क्यों दिखाई देते हैं, यह सहज बात भी जो पूछने की चीज़ है, यह बात हमारे मन में आती भी नहीं। लेकिन छोटा, बड़ा, सहज, कठिन, सब बातों का जवाब तलब

करने के काम में विज्ञान लगा हुआ है। पके केश सफ़ेद हैं, इसी लिए सफ़ेद दिखते हैं, इसी प्रकार की धोखा-भरी युक्ति देकर हमारी बुद्धि ने अब तक मन को शान्त कर रखा था। विज्ञान ने कहा, यह उत्तर आरामजनक हो सकता है किन्तु सन्तोष-जनक नहीं है। बूढ़े आदमी के मस्तक पर कौन सी घटना घटती है और तब केश सफ़ेद होने लगते हैं, इस बात की खोज करने के लिए बुद्धि को प्रायः साढ़े नौ करोड़ मील दौड़ाना पड़ता है। वहाँ अत्यन्त प्रकाण्ड और प्रचण्ड आग्नेय गैस के उत्स से जिस तेज की धारा चली आ रही है वह बूढ़े के केश में आकर टकराई, और प्रतिक्षण उससे टकराकर लौट आने लगी, इसी लौटते प्रकाश में केश सफ़ेद दिखाई देने लगे। क्यों यह प्रकाश लौट आता है, मालूम नहीं। किन्तु यह अत्यन्त छोटी घटना विश्व के कितनी बड़ी घटना के साथ नित्य ही योग-युक्त है यह सोचकर अवाक् हो रहना पड़ता है। संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जो सबसे स्वतंत्र होकर अपने आप घट रहा हो, जिसका हिसाब सारे ब्रह्माण्ड में कहीं भी न मिलता हो।

सूर्य-किरणों के साथ लिपटी हुई ऐसी अनेक तरंगे हैं, जो अति अल्प परिमाण में आती हैं और इसी लिए हम उन्हें अनुभव नहीं कर सकते। ऐसी भी तरंगें हैं जो आती तो काफ़ी मात्रा में हैं पर पृथ्वी का वायु-मण्डल उन्हें बीच ही में रोक रखता है। नहीं तो हमें जलकर मर जाना पड़ता। सूर्य का जितना

दान हम बर्दाश्त कर सकते हैं, पहले से ही उसके साथ हमारे देहतन्त्र का समझौता हो गया है। उसके बाहर हमारी जीवन-यात्रा का कारबार बंद है।

इस विश्वरूपी चित्र में जो चीज सबसे अधिक हमारी आँखों को आकृष्ट करती है वह है नक्षत्रलोक और सूर्य, जो स्वयं एक नक्षत्र है। इतने दिनों तक ये ही मनुष्य के मन में प्रधानता पाते आये हैं। वर्तमान युग में मनुष्य को सबसे अधिक आश्चर्य में डाल दिया है, इस विश्व के भीतर छिपे हुए विश्व ने, जो अतिशय सूक्ष्म है। यह आँखों से नहीं देखा जाता फिर भी वास्तव में समस्त सृष्टि के मूल में है।

एक मिट्टी के घर को लेकर यदि हम जाँच करें कि उसके मूल में क्या वस्तु है तो कुछ धूल के कण मिलेंगे। इन कणों को तोड़ने पर जब और टुकड़े नहीं हो सकेंगे, तो हम कहेंगे कि ये कण ही मिट्टी के घर के मौलिक मसाले हैं। मनुष्य ने एक दिन ऐसा ही सोचा था। विश्व के पदार्थों के टुकड़े करते करते जब इतने सूक्ष्म टुकड़े हो जायँगे कि उन्हें और अधिक न तोड़ा जा सके तो इन्हीं को विश्व के आदि भूत अर्थात् मौलिक सामग्री कहेंगे। हमारे शास्त्रों में इसे परमाणु और यूरोपीय शास्त्र में आटम कहते हैं। ये इतने सूक्ष्म हैं कि दश करोड़ परमाणुओं को एक पर एक सजाने से उनका माप केवल एक इंच होता है।

सहज उपाय से धूल के कणों को हम अधिक भाग नहीं

कर सकते पर वैज्ञानिक तकाजा विश्व की सब सामग्री को और भी अधिक सूक्ष्म हिस्सों तक ले जा सका है। आखिरकार हम ९२ अमिश्र पदार्थों तक पहुँचे हैं। पंडितों ने कहा है कि इन्हीं के योग-वियोग से संसार की सभी चीजें बनी हैं, इनकी सीमा को पार करने का उपाय नहीं।

मान लिया जाय कि मिट्टी के घर का एक अंश तो विशुद्ध मिट्टी से बना है और दूसरा मिट्टी में गोबर मिलाकर। तो फिर दीवाल का चूर्ण करने पर दो तरह के कण मिलेंगे, एक तो विशुद्ध धूल के कण और दूसरे धूल के साथ मिले हुए गोबर का चूर्ण। इसी प्रकार विश्व की मूल वस्तुओं की जाँच करके विज्ञानी लोगों ने दो श्रेणियों में भाग किया है, एक का नाम मौलिक और दूसरे का नाम यौगिक है। मौलिक पदार्थों में कोई मिलावट नहीं है, लेकिन यौगिक पदार्थों में एकाधिक पदार्थ मिले हुए हैं। सोने के परमाणु मौलिक हैं, उसके जितने भी सूक्ष्म टुकड़े क्यों न किये जायँ सोने के सिवाय और कुछ नहीं मिलेगा। पानी यौगिक पदार्थ है उसे भाग करने पर दो मौलिक गैस निकल आते हैं, एक का नाम है आक्सीजन और सरे का हाईड्रोजन। ये दोनों गैस जब अलग अलग रहते हैं तो उनके गुण अलग तरह के होते हैं, पर ज्यों ही ये मिलकर जल हो जाते हैं, त्यों ही उनके पहचानने का कोई उपाय नहीं रह जाता, उनके मिलन से एकदम नया स्वभाव उत्पन्न होता है। सभी यौगिक पदार्थों का यही हाल है।

ये अपने भीतर अपने आदि पदार्थ के परिचय को गुप्त रखते हैं। जो हो, एक दिन यही आटम पदवीधारी परमाणुगण मूल उपादान कहलाने की कीर्ति के अधिकारी समझे जाते थे। सब ने कहा था, इनका टुकड़ा अब नहीं हो सकता। किन्तु अन्त में उनके भी टुकड़े हो गये। जिसे हमने परमाणु कहा था, उसे तोड़ते-तोड़ते उसके भीतर अति परमाणु पाये गये। यह एक अपूर्व वस्तु है, इसे वस्तु कहने में भी संकोच होता है। समझाकर कहने की कोशिश करता हूँ।

आज-कल इलेक्ट्रिसिटी (बिजली) शब्द ख़ूब चल पड़ा है—इलेक्ट्रिक बत्ती, इलेक्ट्रिक पंखे और ऐसे ही अनेकों न जाने क्या-क्या। सभी जानते हैं कि यह एक प्रकार का तेज है। यह भी सभी जानते हैं कि मेघ में से आकाश में चमकनेवाली विद्युत् भी इलेक्ट्रिसिटी के सिवा और कुछ नहीं है। यह विद्युत् ही पृथ्वी पर सर्वाधिक प्रबल पराक्रम के साथ आलोक और गर्जन के द्वारा इलेक्ट्रिसिटी की घोषणा करती है और शरीर पर लगने पर भयंकर हो उठती है। इलेक्ट्रिसिटी शब्द को हम हिंदी में वैद्युत कहेंगे।

इस वैद्युत की दो जातियाँ हैं। विज्ञानी लोगों ने एक जाति का नाम दिया है पज़िटिव् और दूसरी का नेगेटिव्।

अनुवाद किया जाय तो एक हुआ हाँ-धर्मी और दूसरा ना-धर्मी। इनका स्वभाव एक दूसरे के विरुद्ध है, इन्हीं दोनों विपरीतों को मिलाने से संसार में जो कुछ है वह सब हुआ है।

फिर भी पज़िटिव् के प्रति पज़िटिव् की और नेगेटिव् के प्रति नेगेटिव् की आसक्ति नहीं है। इनका आकर्षण विपरीत पक्ष की ओर ही होता है।

इन दो जातियों के अति सूक्ष्म कणों के झुण्ड मिल कर ही परमाणु हुए हैं। इन दो पक्षों को लेकर प्रत्येक परमाणु मानो सूर्य और ग्रहों के मिलित सौरमण्डल के समान है। सूर्य जिस प्रकार सौर-लोक के केंद्र में रह कर आकर्षण के लगाम से पृथ्वी को घुमा रहा है, पज़िटिव् वैद्युत कण भी उसी प्रकार परमाणु के केन्द्र से नेगेटिव् कणों को खींच रहा है और वे सर्कस के घोड़ों की तरह लगामधारी पज़िटिव् के चारों ओर चक्कर मार रहे हैं।

पृथ्वी सूर्य के चारों ओर नौ करोड़ मील दूरी रखकर चक्कर काट रही है। आयतन की तुलना करके देखा जाय तो अति परमाणुओं के कक्ष-पथ का दूरत्व अनुपात में उससे अधिक ही है, कम नहीं। परमाणु जिस अणुतम आकाश को अधिकार किये है, उसके भीतर भी दूरत्व की बहुत कमी-बेशी है। पहले ही नक्षत्रलोक में के वृहत्त्व और अति विशालता की बात कह चुका हूँ, किन्तु अत्यन्त छोटे को भी 'अत्यन्त विशाल छोटा' कह सकते हैं। जिस प्रकार वृहत् विशालता की सीमा को संख्या चिह्न से घेरने पर एक के बाद बीस पचीस अंक बैठाने होते हैं, क्षुद्रतम विशालता के विषय में भी यह एक ही बात ठीक है। उसकी संख्या की फौज भी लंबी कतार

बाँधकर खड़ी होती है। परमाणु के अति सूक्ष्म आकाश में अति परमाणु-गण जिस दूरी पर चक्कर मार रहे हैं उसकी उपमा देते हुए एक विख्यात ज्योतिषी ने कहा है कि हावड़ा स्टेशन की और सब चीजें हटाकर केवल ५-६ बर्र छोड़ दिये जायँ तो उसी के साथ परमाणु के आकाश में स्थित अति परमाणुओं को तुलना हो सकती है। किन्तु इस व्यापक शून्य के भीतर कई दूरवर्ती चंचल पदार्थों को रोक रखने के लिए परमाणु के केन्द्र वस्तु का समस्त भार सारा कार्य कर रहा है। यह न होता तो परमाणु जगत् तहस-नहस हो जाता और परमाणुओं से गठित इस विश्वजगत् की हस्ती ही न रहती।

अब हाईड्रोजन गैस के परमाणुओं की दुनिया में दृष्टि दी जाय।

इससे अधिक हल्का गैस दूसरा नहीं है। इसके परमाणु केन्द्र में केवल एक वैद्युत कण विराज रहा है जिसकी जाति को प्रोटन कहते हैं और इसी के आकर्षण में बद्ध होकर एक छोटी सी कणिका उसके चारों ओर चक्कर मार रही है, इसकी जाति को इलेक्ट्रन कहते हैं। प्रोटन पज़िटिव्-धर्मी है, इलेक्ट्रन नेगेटिव-धर्मी। नेगेटिव इलेक्ट्रन चटुल-चञ्चल है और पज़िटिव् प्रोटन धीर-गंभीर। इलेक्ट्रन के वज़न की तो कुछ गिनती ही नहीं, परमाणु का समस्त भार उसके केन्द्र-वस्तु में जमा हुआ है।

मोटी तौर पर सब इलेक्ट्रन ही ना-धर्मी हैं, परन्तु एक

जाति के ऐसे भी इलेक्ट्रन गिरफ़्तार किये जा सके हैं जो हाँ-धर्मी हैं, फिर भी इनका वज़न इलेक्ट्रन के समान ही है। इनका नाम रखा गया है पाज़िट्रेन।

पहले ही बता चुका हूँ कि दो विपरीत-धर्मी वैद्युतों में परस्पर साठगाँठ रहती है; परमाणु केन्द्र के प्रोटन अपने कक्ष-पथ के इलेक्ट्रनों को खींचकर परस्पर मिल जा सकते थे—पर इसलिए मिल नहीं पाते कि इलेक्ट्रन के दौड़ने का जो प्रचण्ड वेग है वही प्रोटन के आकर्षण के ज़ोर को एक सीमा में रोक रखता है, मर्यादा का उल्लंघन नहीं होने देता। इलेक्ट्रन के दौड़ने का वेग प्रतिसेकेंड १३५० मील है। सूर्य और पृथ्वी में भी यही व्यवहार है। पृथ्वी के दौड़ने का वेग अगर अत्यन्त अधिक बढ़ जाय तो वह सूर्य के आकर्षण से अपने को छिटका कर छूट भागे और अगर दौड़ने का वेग अत्यन्त शिथिल हो जाय तो सूर्य ही उसे हड़प ले। परमाणुलोक में दौड़ने के आकर्षण का जो नियम बँधा है, उससे इलेक्ट्रन मण्डली से बाहर निकल कर नहीं जा सकता और फिर प्रोटन भी इलेक्ट्रन के प्रदक्षिणपथ की मर्यादा की रक्षा करता रहता है।

कभी कभी देखा गया है कि एक विशिष्ट प्रकार के हाईड्रोजन का परमाणु साधारण परमाणुओं से दूना भारी है। परीक्षा करके देखा गया कि केन्द्र में प्रोटन के साथ उसका एक और सहयोगी भी है। पहले ही कहा गया है कि प्रोटन हाँ-धर्मी होता है। उसके केन्द्र का जो साझेदार है उसकी जाँच

करने से मालूम हुआ कि वह साम्यधर्मी है, न हाँ-धर्मी और न ना-धर्मी। इसी लिए उसमें कोई वैद्युत धर्म नहीं है उसका वज़न अपने संगी प्रोटन के बराबर ही है किन्तु प्रोटन जिस प्रकार इलेक्ट्रन को खींचता है, यह वैसा खींच नहीं सकता, और फिर प्रोटन को धक्का मारकर गिरा देने की कोशिश भी नहीं करता। इस कण का नाम न्यूट्रन रखा गया है। ऐसा भी हाईड्रोजन पाया गया है जिसका वज़न तीन गुना अधिक है। अर्थात् उसके परमाणु में एक प्रोटन और दो न्यूट्रन हैं। एक बात लक्ष्य करके देखी गई है कि एक प्रोटन केवल एक ही इलेक्ट्रन पर शासन रख सकता है। अन्य जाति के कणों की बाँट से परमाणु को जितना भारी भी क्यों न कर दिया जाय, इलेक्ट्रन के ऊपर उसका ज़ोर नहीं चलता। परमाणु के केन्द्र में प्रोटन की संख्या जिस परिमाण में अधिक होगी उसी परिमाण में वे इलेक्ट्रन को वश में रख सकते हैं। आक्सिजन गैस के परमाणु के केन्द्र में आठ प्रोटन रहते हैं, और साथ में आठ न्यूट्रन भी रहते हैं, किसी-किसी जगह दस-दस, किन्तु तौभी प्रदक्षिणकारी इलेक्ट्रनों की संख्या ठीक आठ ही रहती है।

पज़िटिव और नेगेटिव् जहाँ पर यथा-परिमाण मिलकर संधि करके शान्तिपूर्वक रह रहे हैं वहाँ यदि किसी उपाय से गृह-विच्छेद घटा दिया जाय, अर्थात् कुछ नेगेटिवों को निकाल बाहर किया जाय तो वह वस्तु वैद्युत के परिमाण के हिसाब से बेमेल

हो जायगी और पज़िटिव वैद्युत का चार्ज अतिरिक्त हो उठेगा। स्त्री पुरुष मिलकर जहाँ गृहस्थी सामंजस्यपूर्ण ढंग से चला रहे हैं, वहाँ से स्त्री का प्रधान्य जिस परिमाण में हटा दिया जायगा उसी परिमाण में वह गृहस्थी पुरुष-प्रधान हो उठेगी, यह भी वैसा ही है।

इलेक्ट्रिसिटी के प्रसंग में यह 'चार्ज' शब्द सदा व्यवहार किया जाता है। सधारणतः जिन चीजों को हम व्यवहार में लाते हैं उनमें वैद्युत की छटपटाहट नहीं देखी जाती, वे चार्ज किये हुए नहीं हैं, अर्थात् दो जाति के वैद्युत जिस परिमाण में परस्पर मिलजुलकर शान्तिपूर्वक रहा करते हैं, वह परिमाण इनमें है। किन्तु किसी चीज में कोई एक वैद्युत यदि संधि न मानकर, अपने निर्दिष्ट परिमाण को अतिक्रम करे और मर्यादा मानना न चाहे तो उस वैद्युत के द्वारा वह वस्तु चार्ज की गई है, ऐसा कहा जाता है।

एक टुकड़ा रेशम लेकर काँच पर रगड़ा गया। नतीजा यह हुआ कि रगड़ पाकर काँच में से कुछ इलेक्ट्रन निकल आये, उनकी रफ़्तनी हुई रेशम में। काँच में नेगेटिव् के कम होते ही पज़िटिव की प्रधानता हो गई, उधर रेशम में नेगेटिव् वैद्युत का प्रभाव बढ़ गया, अब यह नेगेटिव् वैद्युत के द्वारा चार्ज कर दिया गया। काँच में इलेक्ट्रिक की कमी पड़ गई थी, उसने अपने पज़िटिब चार्ज के झोंक में रेशम को खींच लेना चाहा, उधर नेगेटिव् की भीड़वाले रेशम का खिंचाव

काँच की ओर हुआ। काँच या रेशम का साधारण तंत्र जब अक्षुण्ण था, तब तक वे अपने आप में ही सहज थे, शान्त थे। शान्त अवस्था में इनमें वैद्युत का अस्तित्व ज्ञात ही नहीं होता था। ज्यों ही बाहर के वैद्युतिक गृह-विप्लव की ख़बर मालूम हो गई त्यों ही भाग बँटवारे की असमानता ने क्षोभ पैदा कर दिया।

काँच या अन्य किसी पदार्थ से रगड़ के द्वारा मामूली परिमाण में इलेक्ट्रन निकाल लेने की बात मैंने कही है। यदि विज्ञानी से पूछो कि यह परिमाण कितना है तो वे गर्दन हिलाकर कहेंगे, रगड़ की मात्रा के अनुसार चालीस, पचास, साठ करोड़ तक हो सकता है। बिजली बत्ती के पलीते के तार में से जब इलेक्ट्रन की ठसाठस भीड़ दौड़ती रहती है तभी वह जलता है। उसके इस प्रान्त से उस प्रान्त तक जितने इलेक्ट्रन एक साथ यात्रा करते हैं उस संख्या का हमारे गणितशास्त्र में क्या नाम है, यह बात मैं तो नहीं जानता। जो हो, यह देखा गया कि अति परमाणुओं का दुरन्त चाञ्चल्य पज़िटिव और नेगेटिव् की सन्धि से संयत हो रहा है, इसी लिए इस विश्व में शान्ति है। भालूवाला मदारी डमरू बजाता है और उसके प्रत्येक ताल पर भालूनाचता और नाना खेल दिखाता है। यदि डमरूवाला न हो, और पालतू भालू यदि बंधन तोड़कर अपने स्वधर्म में आ जाय तो फिर काटकर और नोंचकर चारों ओर अनर्थ कर डाले। हमारे सारे शरीर में और देह के बाहर भी इस पालतू विभीषिका के द्वारा किसी अदृश्य डमरू के छन्द (ताल) पर सृष्टि

का नाच और खेल चल रहा है। सृष्टि के अखाड़े में दो खिलाड़ी खेल रहे हैं और अपने भीषण द्वन्द्व के समन्वय से विश्वचराचर की रंगभूमि को गर्म कर रखा है।

सुविख्यात अंग्रेज विज्ञानी रदरफोर्ड ने परमाणु रहस्य को सौर मण्डली के साथ तुलनीय करके बताया कि परमाणु को घेर-कर भिन्न-भिन्न चक्र-पथ (कक्ष-मार्ग) में इलेक्ट्रनों के दल चक्कर काट रहे हैं। एक और पंडित ने साबित किया कि चक्कर मारनेवाले इलेक्ट्रन कक्ष-पथ से कूदकर दूसरे कक्ष-पथ में जा-कर स्थान बदला करते हैं, और फिर अपने निर्दिष्ट रास्ते पर लौट आते हैं। इस उछल-कूद के समय ही उनमें से किरण विकीर्ण होती हैं। सूर्य के परमाणु या जलता हुआ पलीता इस कूदनेवाले इलेक्ट्रन की चमक से ही प्रकाश फेंकते हैं। अन्त में एक गणित विज्ञानी ने सिद्ध किया कि इन कूदनेवाले और चक्कर मारनेवाले इलेक्ट्रनों की गति में एक प्रकार की तरंग काम करती है। इस प्रकार कूदने, छिटकने और लहराने के बोधातीत व्यापार को लेकर परमाणु की स्थिति है।

पहले ही बता चुका हूँ कि एक समय के विज्ञानी लोगों ने खूब दृढ़ता के साथ ही घोषित किया था कि ९२ आदि भूत ही विश्वसृष्टि के मौलिक पदार्थ हैं, अति परमाणुओं की साखी ने इस बात को अप्रमाणित कर दिया, तौभी उनके सम्मान को उपाधि आज भी रह गई है, हम आज भी उनको मौलिक पदार्थ ही कहते हैं।

एक ऐसा भी समय था जब कि इन मौलिक पदार्थों के सम्बन्ध में यह मशहूर था कि उनके गुणों में नित्यता है। उन्हें जितना भी क्यों न तोड़ा जाय उनका स्वभाव नहीं बदलता। विज्ञान के नये अध्याय में देखा गया कि उनका चरम भाग किया जाय तो दो जाति के वैद्युतों का युग्म-नृत्य निकल पड़ता है। जिन्हें मौलिक पदार्थ कहा गया है उनके स्वभाव के विशेषत्व को इन्हीं वैद्युतों ने विशेष संख्या में एकत्र होकर बचा रखा है। अगर यहीं रुका गया होता तोभी परमाणुओं के रूप-नित्यता की शुहरत टिक जाती। किन्तु उनके अपने दल से ही विरुद्ध गवाही मिली है। देखा गया है कि जो परमाणु हलके हैं, उनके भीतर इलेक्ट्रन और प्रोटन का चक्कर मारना नित्य नियमित भाव से ही चला आ रहा है। किन्तु जो अत्यन्त भारी है, जिनमें न्यूट्रन प्रोटन संघ की ठसा-ठस भीड़ बहुत अधिक है, जैसे यूरेनियम या रेडियम, वे अपनी पूँजी सम्हाल नहीं सकते। सदा सर्वदा ही उनकी मूल पूँजी छिटकती रहती है और हल्के होकर वे एक रूप से दूसरा रूप धारण करते रहते हैं।

अब तक रेडियम नामक एक मौलिक धातु स्थूल आवरण में छिपा हुआ था। उसके आविष्कार के साथ ही साथ परमाणु का गूढ़ रहस्य मालूम हो गया। विज्ञानियों के साथ उसका जो पहला मुक़ाबिला हुआ उसका इतिहास याद रखने लायक़ है।

हाँरी वेकरेल पैरिस म्यूनिसिपल स्कूल में विज्ञान के अध्या-

पक थे। एक दिन संयोगवश उन्होंने अपनी प्रयोगशाला में एक टुकड़ा यूरेनियम धातु एक फोटोग्राफी के प्लेट पर रख दिया था। दो सप्ताह बाद वही प्लेट लेकर उन्होंने अपने सहकारी को उसका चित्र लेने के लिए दिया। देखा गया कि प्लेट के बीच में काफ़ी बड़ा एक प्रकाश का चिह्न पड़ा हुआ है। यूरेनियम के टुकड़े से ही अदृश्य प्रकाश विकीर्ण होकर प्लेट पर गिरफ़्तार हुआ है। इस बात को निस्सन्देह प्रमाणित किये बिना वे कोई मत स्थिर न कर सके। उस समय वे अन्य प्रयोगों में उलझे हुए थे। इसलिए इस प्रयोग की परीक्षा का भार उन्होंने अपनी असामान्य बुद्धिमती छात्री मैडम कुरी के ऊपर दिया। यह महिला फ्रांसीसी विज्ञान-विद्यालय में अपने पति अध्यापक पियर कुरी की सहयोगिनी होकर प्रयोग-परीक्षा का काम करती थीं। दोनों पति-पत्नी मिलकर इस अज्ञात धातु की खोज में लग गये। काफ़ी रुपये की ज़रूरत थी, फिर भी ये कर्ज़ लेने में कुंठित नहीं हुए। अस्ट्रिया से २९ मन का एक धातु-पिण्ड खरीद लाये, इसे पिचब्लेंड कहते हैं। यूरेनियम एक विमिश्र खनिज पदार्थ है। पति-पत्नी इसके शोधन और विश्लेषण के कार्य में जुट गये। प्रातःकाल से लेकर आधी रात तक काम करते-करते साल गुज़र गया। सांसारिक बाधाएँ भी कम नहीं आईं। अन्त में परीक्षा की प्रणाली से खनिज वस्तु जब घिसते-घिसाते इतना सूक्ष्म हो गया कि खुर्दबीन के बिना देखा न जा सके, तब एक दिन सायंकाल अपनी प्रयोगशाला में प्रवेश

करके देखा कि परीक्षा से बचे हुए उस पदार्थ से दीप्ति निकल रही है। इस [illegible] पदार्थ के भीतर से मैडम कुरी ने विशुद्ध रेडियम के कई दाने चुन लिये। और भी पाँच वर्ष तक सन्धान और आलोचना करने के बाद अन्त में उन्होंने रेडियम के सम्बन्ध में लिखी हुई अपनी रचना परीक्षक-समिति के हाथ में दिया। शीघ्र ही सारे संसार में यह विस्मयकर समाचार घोषित हुआ। उन दिनों सबसे अधिक विस्मय जिस बात से हुआ वह था इस धातु का अद्भुत स्वभाव। यह अपने आप में से ज्योतिष्कणा विकीर्ण कर अपने को नाना मौलिक पदार्थ में रूपान्तरित करता हुआ आखिरकार सीसा हो जाता है। इसे मानो एक वैज्ञानिक इन्द्रजाल कह सकते हैं। यह बात पहले-पहल जानी गई कि एक धातु से दूसरे धातु का उद्भव हो सकता है।

जो पदार्थ रेडियम की जाति के हैं, अर्थात् तेज छिटकाना ही जिनका स्वभाव है, वे सभी जाति खो देनेवाले दल के हैं। के बराबर ही अपने तेज का मूल धन खर्च करते रहते हैं। इस अपव्यय की सूची में जो तेज पदार्थ पहले पड़ता है, उसका नाम ग्रीक वर्णमाला के प्रथम अक्षर के नाम पर आल्फा दिया गया है। हिंदी वर्णमाला के हिसाब से उसे क कह सकते हैं। यह पजिटिव जाति का एक परमाणु है। नवीन उद्भावित एक यंत्र के आकाश में जब इसे दौड़ाया गया तो उस यंत्र की भीगी हवा के कणों को प्रबल वेग से आघात पहुँचा कर इसने

जला दिया । यह जो रास्ता जल उठा उसी के मार्ग में उसके परिचय की लेखन-रेखा अंकित हो गई । छिटकाकर फेंकी हुई तेज की एक और कणा है, इसका नाम दिया गया है बीटा, हिंदी में ख कह सकते हैं। यह नेगेटिव् चार्ज किया हुआ इलेक्ट्रन है। इसका वेग प्रचण्ड है। चलने के रास्ते में एक पतला काग़ज़ रख देने से आल्फ़ा परमाणु का देहान्तर लाभ होता है, अर्थात् वह हीलियम गैस बन जाता है। बीटा को रोकने के लिए दो कागज़ लगते हैं । रेडियम के तूणीर में इन दो के सिवा एक और वस्तु है। उसका नाम है गामा। यह परमाणु या अति परमाणु नहीं है, एक विशेष प्रकार की प्रकाश-रश्मि है। उसकी किरण स्थूल वस्तु को भेद सकती है, जैसा कि रैन्टगेन रश्मि करती है।

परमाणु के पिण्ड में जब तक कोई नुक़सान नहीं होता तब उसकी विशेषता अव्याहत रहती है। उसके सीमान्त से यदि दो चार इलेक्ट्रन छीन लिये जायँ तो उसके निर्दिष्ट वैद्युतों की संख्या में कुछ कमी पड़ सकती है किन्तु यह कमी घातक नहीं होती। यदि उसके केन्द्र-वस्तु के ख़ास ख़ज़ाने में लूट-पाट सम्भव हो तभी उस परमाणु की जाति बदल सकती है। दृष्टान्त दिखाया जाय। एक गैस के आधार में केवलमात्र नाईट्रोजन था। उसमें आल्फ़ा कणिका दौड़ाई गई; इसने नाईट्रोजन परमाणु के केन्द्र-वस्तु में धक्का मारा। उसकी प्रोटन संस्थिति हिल गई, इस प्रकार वह हाईड्रोजन और आक्सीजन

गैस में रूपान्तरित हो गया। कैसे हुआ वह भी बत आल्फा कणिका के प्रचण्ड आघात से नाईट्रोजन के केन्द्र में स्थित प्रोटन-संस्थिति से एक प्रोटन छिटककर बाहर निकल गया आल्फा-कणा ने उसे हटा तो दिया किन्तु स्वयं जा फँसी उनके दल में। इससे उनका वज़न बढ़ गया और वे दो गैसों का रूप धारण कर गये।

इसी लिए विज्ञानियों ने पहले आशा की थी कि तेज का वार करनेवाले इस रेडियम गोलंदाज़ को परमाणु केन्द्र की पूँजी लूटने की राहज़नी में नियुक्त करेंगे। लेकिन लक्ष्य बहुत सूक्ष्म है और निशाना मारना सहज नहीं है। तेज के अनेक ढेले मारने के बाद संयोगवश एक लग गया तो लग गया। इसी लिए इस प्रकार की अनिश्चित लड़ाई के बदले आज-कल विशाल यंत्र तैयार करने का आयोजन चल रहा है, ताकि अति प्रचण्ड शक्तिशाली वैद्युत पैदा होकर परमाणु के केन्द्र-दुर्ग के दुर्भेद्य पहरे को भेद सके। वहाँ प्रबल प्रचण्ड शक्ति का पहरा है। आज जिस समय लाख-लाख मनुष्यों को मारने के लिए सहस्रघ्नी यंत्रों का उद्भावन हो रहा है ठीक उसी समय विश्व के सूक्ष्मतम पदार्थ के अलक्ष्यतम मर्म को विदीर्ण करने के लिए विराट् वैद्युत-वर्षणी का कारख़ाना बनने जा रहा है।

पहले ही कहा है कि आल्फा कणा स्वरूप खो करके हीलियम गैस हो जाती है। इसको पृथ्वी की उमर तय करने के

काम में लगाया गया है। किसी पहाड़ के एक पत्थर में यदि मामूली मात्रा में भी हीलियम गैस पाया जाय तो इस गैस की परिणति में जो निर्दिष्ट समय लगता है उसका हिसाब करके उस पहाड़ की जन्म-कुण्डली तैयार की जा सकती है। इसी प्रणाली से पृथ्वी की उमर का विचार किया गया है।

वज़न के भारीपन में हाईड्रोजन गैस के ठीक ऊपर के ख़ाने में जो गैस है उसका नाम हीलियम गैस रखा गया है। यह गैस विज्ञानियों की दुनिया में नया ही जाना गया है। यह पहले-पहल सूर्य-ग्रहण के समय मालूम हुआ था। सूर्य अपने चक्र की सीमा अतिक्रम करके लाखों कोस दूर तक जलते हुए वाष्प का अति सूक्ष्म उत्तरीय चादर (चादर) उड़ाया करता है, जिस प्रकार झरना अपने चारों ओर जलकण का कुहरा फैला देता है। इसी लिए ग्रहण के समय दूरबीन से उसके चारों ओर के आग्नेय गैस का विस्तार दिखाई पड़ता है। इस दूरविक्षिप्त गैस की दीप्ति को यूरोपीय भाषा में करोना कहा जाता है, हिंदी में इसे किरीटिका कह सकते हैं।

कुछ दिन पहले सन् १९३७ ई० के सूर्य-ग्रहण का सुयोग पा कर जब इस किरीटिका की परीक्षा की गई तो उस समय वर्ण लिपि की नील सीमा की ओर तीन अज्ञात सफ़ेद लकीरें दिखाई दीं। पंडितों ने सोचा कि ख़ूब संभव यह कोई आगे का जाना हुआ ही पदार्थ है जो अधिक जलने के कारण नई

दशा को प्राप्त हो गया है, और यह उसी का चिह्न है। या बहुत संभव, कोई नया पदार्थ ही जाना गया अब भी उसका कुछ पता नहीं चला।

सन् १८६८ ई० के ग्रहण के समय भी विज्ञानियों को एक ऐसा ही आश्चर्य हुआ था। सूर्य के गैस के घेरे में से एक ऐसे पदार्थ की लिपि प्राप्त हुई जिसे तब तक कोई जानता नहीं था। इस नये जाने हुए पदार्थ का नाम दिया गया हीलियम अर्थात् सौरक; क्योंकि उस समय सोचा गया था कि यह गैस अकेले सौरमण्डल में ही है। बाद को १० वर्ष बीत जाने पर विख्यात विज्ञानी रैमजे ने इस गैस के अस्तित्व का पता अति सामान्य मात्रा में पृथ्वी के वायुमण्डल में पाया। उस समय स्थिर हुआ कि यह गैस पृथ्वी पर दुर्लभ है। इसके बाद देखा गया कि दक्षिण अमेरिका के किसी मिट्टी के तेल के खदान में जो गैस पाया जाता है उसमें हीलियम काफ़ी मात्रा में मिलता है। फिर तो इसे काम में लगाने में सुबिधा हुई। अत्यन्त हल्का होने के कारण बहुत हाल तक हाईड्रोजन गैस ही हवाई जहाज़ उड़ाने के काम में लाया जाता था। लेकिन हाईड्रोजन गैस उड़ाने के लिए जिस प्रकार आसानी से काम देता है, जला देने में भी उससे कम नहीं है। इस गैस ने अनेक बड़े बड़े हवाई जहाजों को जलाकर राख कर दिया है। हीलियम गैस में उस छिपी हुई प्रचण्ड ज्वलन-चण्डी का निवास नहीं है। हाईड्रोजन को छोड़कर अन्य सभी गैसों से

यह अधिक हल्का है। इसी लिए जहाज़ उड़ाने के काम को निरापद बनाने के लिए अब इसी का व्यवहार होने लगा है। चिकित्सा के लिए भी किसी किसी रोग में इसका प्रयोग शुरू हुआ है।

पहले ही बताया गया है कि पज़िटिव चार्जवाले और नेगेटिव चार्जवाले पदार्थ परस्पर एक दूसरे को अपनी ओर खींचते हैं। लेकिन एक ही जाति के चार्जवाले पदार्थ एक दूसरे को ठेलकर फेंक देना चाहते हैं। उन्हें जितना ही नज़दीक किया जाता है उनके ठेलने का वेग उतना ही उग्र हो उठता है। इसी प्रकार विपरीत चार्जवाले परस्पर जितने ही नज़दीक आते जाते हैं उतना ही उनके आकर्षण का ज़ोर बढ़ता जाता है। इसी लिए जो इलेक्ट्रन केन्द्र-वस्तु के पास रहते हैं वे आकर्षण के वेग से बचने के लिए और तेज़ी से दौड़ा करते हैं। सौर मण्डल में भी जो ग्रह सूर्य के जितने ही निकट हैं वे उतने ही तेज़ दौड़ते हैं। दूर के ग्रहों को विपत्ति का डर कम रहता है, वे बहुत कुछ धीर भाव से, इत्मीनान के साथ, चलते हैं।

दो प्रोटनों की पारस्परिक विमुखता का ज़ोर समझाने के लिए रसायनिक पंडित फ्रेडरिक साडी ने हिसाब लगाकर बताया है कि यदि पृथ्वी के एक मेरु पर एक ग्राम प्रोटन रखा जाय और दूसरे मेरु पर और एक ग्राम तो इस चार हज़ार मील की दूरी को अतिक्रम करके उनके धक्का मारने का ज़ोर प्रायः ६ सौ मन के दबाव के बराबर होगा। अगर यही विधान हो तो यह

समझना मुश्किल है कि परमाणु केन्द्र की अति संकीर्ण सीमा में एक से अधिक प्रोटन किस प्रकार मिल-जुलकर रह सकते हैं। इस नियम के अनुसार हाईड्रोजन (जिसके केन्द्र में केवल एक प्रोटन का एकच्छत्र राज्य है) को छोड़कर विश्व का और कोई पदार्थ तो टिक ही नहीं सकता; और फिर विश्व जगत् तो हाईड्रोजनमय ही हो उठता।

इधर हम देखते हैं कि यूरेनियम धातु में ९२ प्रोटन और १४६ न्यूट्रन हैं। यह ठीक है कि इतनी बड़ी भीड़ वह सँभाल नहीं सकता, प्रतिक्षण अपने केन्द्र भाण्डार से प्रोटन और न्यूट्रन का बोझा हलका करता रहता है। भार जब कुछ कम हो जाता है तो वह रेडियम का रूप ग्रहण करता है, और भी कम होने पर पलेनियम और सबसे अन्त में सीसा का रूप धारण करके स्थिति पाता है।

वज़न में इतना काट-छाँट करके भी वह किस प्रकार स्थित रहता है, यह सन्देह तो दूर नहीं हुआ। विकिरण का कर्तव्य करके भी सब कुछ कट-छँट जाने के बाद सीसे के हक में ८२ प्रोटन बच रहते हैं। पज़िटिव वैद्युत का धक्कामार स्वभाव पाकर भी ये प्रोटन किस प्रकार परमाणु लोक की शान्ति-रक्षा करते हैं, इस सवाल का अच्छा जवाब बहुत दिनों तक की जाँच के बाद भी नहीं मिला। केन्द्र के बाहर तो इनका झगड़ा मिटता नहीं, लेकिन केन्द्र के भीतर इनकी मित्रता अटूट है, यह एक विषम समस्या है।

इस रहस्य को भेदने के लिए यंत्र-शक्ति का बल बढ़ाया गया। परमाणु के केन्द्र-गत प्रोटन रूपी लक्ष्य के विरुद्ध परीक्षकों ने प्रोटनों की पल्टन लगा दी। जिस संख्या में वैद्युत-शक्ति उन्हें धक्का देकर चलाने लगी, उससे प्रोटनों में प्रति सेकेन्ड ६७२० मील की गति मिली। तोभी केन्द्रस्थित प्रोटन-गण अपने प्रोटन-धर्म की रक्षा करते रहे, आक्रमणकारी प्रोटनों को धक्का मारकर फेंक दिया। ताड़ना-शक्ति का वेग और बढ़ा दिया गया। विज्ञानियों ने गति का वेग बढ़ाकर ७७०० मील प्रतिसेकेन्ड कर दिया, शिकार फिर भी हार मानने को राज़ी नहीं हुआ। अन्त में ८२०० मील वेग का धक्का मारने पर विरुद्ध शक्ति में कुछ नर्म पड़ने के लक्षण दिखे। धकियाने-वाली शक्ति की मेड़ लाँघकर आक्रमणकारी शक्ति केन्द्र-दुर्ग के भीतर पहुँची। देखा गया कि एक प्रोटन के अन्य प्रोटन के जितना निकट पहुँचने पर उनकी परस्पर को धक्का देनेवाली प्रवृत्ति जाती रहती है, वह निकटता है एक इंच के १,२०,००,००,००,००,००० वें हिस्से पर सटकर रहना। तो इससे यह मान लेना पड़ेगा कि उतने सामीप्य पर प्रोटनों में परस्पर को ठेल फेंकने की जो शक्ति है उससे कहीं अधिक शक्ति है परस्पर को आकर्षित कर रखने की। महाकर्ष (आकर्षण) शक्ति की अपेक्षा इसका ज़ोर कई गुना अधिक है। वह शक्ति परमाणुओं की दुनिया में प्रोटन को जिस प्रकार आकृष्ट करती है उसी प्रकार न्यूट्रन को भी, अर्थात् जिसके ऊपर वैद्युत का चार्ज है और

जिनके ऊपर नहीं है, इन दोनों ही पर उसका समान प्रभाव है। परमाणु केन्द्रवासी यह अति प्रबल आकर्षण-शक्ति समस्त विश्व को बाँधे हुए है। जिस शासन ने परमाणुओं के घरेलू झगड़े को मिटा रखा है उसी के प्रताप से विश्व में शान्ति विराजमान है।

आधुनिक इतिहास से इसकी एक उपमा संग्रह कर दी जाय। चीन रिपब्लिक की शान्ति नष्ट करके कुछ एकाधिपत्य लोलुप जेनरल आपस में लड़ाई करके देश को मिट्टी में मिला रहे थे। राष्ट्र के केन्द्र-स्थल में इस विरुद्ध दल से अधिक प्रबल शक्ति अगर होती तो शासन के कार्य में इन सबको एक करके राष्ट्र-शक्ति को बलिष्ठ और निरापद रखना सहज होता। परमाणु के राष्ट्रतन्त्र में वह बड़ी शक्ति सब शक्ति के ऊपर है, इसी लिए जो स्वभावतः नहीं मिलते वे भी मिलकर विश्व की शान्ति-रक्षा कर रहे हैं। इससे मालूम होता है कि विश्व की शान्ति नामक पदार्थ भलमनसी की शान्ति नहीं है। जितने सब उद्दण्ड हैं उन्हें मिला लिया गया है तब कहीं जाकर एक प्रबल मेल संभव हुआ है। जो स्वतन्त्र भाव से सर्वनाशकारी हैं वही मिलित होकर सृष्टि के वाहन बने हुए हैं।

वैद्युत सन्धानी-गण जब अपने कार्य में नियुक्त थे, उसी समय उनके हिसाब में गोलमाल पैदा करके एक अज्ञात शक्ति का अस्तित्व मालूम हुआ। उसके विकिरण को महा जागतिक रश्मि या कस्मिक रश्मि नाम दिया गया। इसे हम आकस्मिक

रश्मि कह सकते हैं। कहाँ से यह शक्ति आ रही है, कुछ समझ में नहीं आया पर इसे देखा गया सर्वत्र। ऐसी कोई वस्तु नहीं, ऐसा कोई जीव नहीं, जिसके ऊपर इसका हस्तक्षेप नहीं चलता। यहाँ तक कि धातु द्रव्य के परमाणुओं को भी यह चोट मारकर उत्तेजित कर देती है। ये किरणें शायद जीव की प्राणशक्ति की सहायता कर रही हैं, या शायद विनाश कर रही हैं,—क्या करती हैं मालूम नहीं, इतना ही निःसंशय कहा जा सकता है कि आघात कर रही हैं।

कस्मिक रश्मियों का इस प्रकार जो निरन्तर वर्षण चल रहा है, उसकी उत्पत्ति का रहस्य अज्ञात ही रह गया। किन्तु जाना गया कि इनका उद्यम विपुल है, सारे आसमान को छा कर इनका सञ्चार हो रहा है; जल में, स्थल में, आकाश में, सर्वत्र ही इनका प्रवेश है। इस महा आगन्तुक के पीछे विज्ञान का गुप्तचर बराबर लगा हुआ है, किसी न किसी दिन इसका गुप्त ठिकाना भी मालूम होकर ही रहेगा।

बहुत से लोग कहते हैं कि कस्मिक प्रकाश, प्रकाश ही है, रैन्टगन रश्मि से कहीं अधिक ज़ोरावर। इसी लिए ये रश्मियाँ सहज ही मोटा सीसा या मोटा सोना पार करके निकल जाती हैं। विज्ञानियों की परीक्षा से इतना ही जाना गया है कि इस प्रकाश के साथ वैद्युत कणिकाय हैं। पृथ्वी के जिस क्षेत्र में चुम्बकीय शक्ति अधिक है, उसी के आकर्षण से ये अपने रास्ते से हटकर मेरु प्रदेश में जमा होती हैं, इसी लिए

पृथ्वी के विभिन्न स्थानों में कस्मिक रश्मि के समावेश की अधिकता या अल्पता दिखाई देती है।

कस्मिक रश्मि के सम्बन्ध में आज भी नाना मतों का आवागमन चल ही रहा है। परमाणु के नूतन तत्त्व के सूत्रपात होने के बाद से ही विज्ञान की दुनिया में मतों और मन्तव्यों का हड़कम्प मच गया है; विश्व के मूल कारख़ाने की व्यवस्था में ध्रुवत्व का पक्का संकेत खोज निकालना असाध्य हो गया है। यदि कोई वस्तु नित्यत्व की ख्याति पा सकती है तो वह केवल एक आदि ज्योति है, जो सब कुछ की भूमिका में है, जिसके प्रकाश के नाना अवस्थान्तरों के भीतर से विश्व का यह वैचित्र्य गठित हो उठा है।

नक्षत्रलोक

यह तो विश्वव्यापी अरूप वैद्युतलोक देखा गया। इन्हीं वैद्युतों के सम्मिलन से ग्रह नक्षत्रों में यह रूपलोक प्रकाशित हो रहा है।

शुरू में ही कह रखता हूँ, यह जानने का कोई उपाय नहीं है कि इस विश्वब्रह्माण्ड का असली चेहरा कैसा है। विश्व-पदार्थ का बहुत थोड़ा ही हमें दिखाई देता है। इसके सिवा हमारी आँख, कान और स्पर्शेन्द्रिय की अपनी विशेषता है। इसी लिये विश्व के पदार्थ विशेष भाव से, विशेष रूप में, हमें दिखाई देते हैं। आँखों में तरंग टकराती है, हम प्रकाश देखते हैं, और भी सूक्ष्म या और भी स्थूल तरंगों को देखने की शक्ति हममें नहीं है। जो-कुछ देखते हैं वह बहुत थोड़ा है, जो कुछ नहीं देखते वह बहुत अधिक है। हमारे आँख और कान इसी तरह के हैं कि हम पृथ्वी का व्यवहार चला सकें; प्रकृति ने यह ख़याल नहीं किया कि हम विज्ञानी बनेंगे। मनुष्य की आँख अणुवीक्षण और दूरबीन इन दोनों का काम समान भाव से कर रही है। प्रकृति ने यदि हमें आज की आँख से कई गुना अधिक अणुवीक्षण शक्ति-सम्पन्न आँख दी होती तो हम पृथ्वी के समस्त पदार्थों में अणु परमाणुओं का आवर्त नृत्य

देखते। यदि बोध की सीमा बढ़ जाती या बोध की प्रकृति अन्य प्रकार की होती तो हमारी यह दुनिया भी दूसरी ही तरह की होती।

सच पूछा जाय तो विज्ञानी के लिए वह दूसरी ही तरह की हो गई है—वह इतनी बदल गई है कि जिस भाषा में हम काम चलाया करते हैं, उसका अधिकांश इस दुनिया में किसी काम नहीं आता। प्रतिदिन इस प्रकार के चिह्नों की भाषा तैयार करनी पड़ रही है कि साधारण मनुष्य उसका सिर-पैर कुछ भी नहीं समझ सकता।

मनुष्य ने एक दिन स्थिर किया कि विश्वमण्डल के केन्द्र में पृथ्वी का आसन अविचल है और सूर्य-नक्षत्र उसकी प्रदक्षिणा कर रहा है। यह बात मानने के लिए उसे दोष नहीं दिया जा सकता—उसने पृथ्वी देखने की सहज आँख से ही देखा था। आज उसकी चक्षुःशक्ति बढ़ गई है—उसे उसने विश्व देखने की आँख बना ली है। अब यह भेद खुल गया है कि पृथ्वी को ही, दरवेशी नाच की तरह चक्कर मारते मारते सूर्य के चारों ओर भागना पड़ रहा है। रास्ता लंबा है, प्रायः ३६५ दिन घूमने में ही लग जाते हैं। इससे भी बड़े रास्तेवाले ग्रह हैं, उनके एकबार घूम आने में इतना अधिक समय लगता है कि उतने दिनों तक बचे रहने के लिए मनुष्य को लोमश मुनि की आयु दरकार होगी।

रात में आकाश के बीच बीच नक्षत्र-पुंज के साथ पुता

हुआ प्रकाश दिखाई देता है। इनका नाम नीहारिका दिया गया है। दूरबीन और कैमरे के योग से जाना गया है कि इस नीहारिका में नक्षत्रों की जो भीड़ लगी हुई है उनकी संख्या कई करोड़ है। नीहारिका-मण्डल में नक्षत्रों की जो भीड़ अत्यन्त प्रचण्ड वेग से दौड़ रही है वह परस्पर धक्का खाकर चूर्ण-विचूर्ण क्यों नहीं हो जाती? उत्तर देते समय चैतन्य हुआ कि इस नक्षत्र-पुंज को भीड़ कहना गलती है। इनमें गले से गला मिलाकर या सटकर रहने का भाव एकदम नहीं है। एक दूसरे से अत्यन्त अधिक दूरी पर ये चलते फिरते हैं। परमाणु के अन्तर्गत इलेक्ट्रनों के गति-पथ की दूरी के सम्बन्ध में सर जेम्स ने जो उपमा दी है इस नक्षत्र-मण्डली के सम्बन्ध में भी उसी प्रकार की उपमा दी है। वे कहते हैं कि लण्डन में वाटर्लू नामक एक स्टेशन है। जहाँ तक मुझे जान पड़ता है, यह स्टेशन हावड़ा स्टेशन से बड़ा ही है। सर जेम्स जीन्स कहते हैं कि उस स्टेशन से और सब कुछ ख़ाली करके केवल छः धूलि-कण बिखरा दिये जायँ तब आकाश के नक्षत्रों का एक दूसरे से जो दूरत्व है वह सब धूलि कणा के विच्छेद के साथ तुलनीय हो सकती है। वे और भी कहते हैं कि नक्षत्रों की संख्या जितनी भी क्यों न हो, आकाश की अचिन्तनीय शून्यता के साथ उसकी तुलना हो ही नहीं सकती।

विज्ञानियों का अनुमान है कि सृष्टि में रूपवैचित्र्य का

अभिनय आरंभ होने के बहुत पहले केवल एक परिव्याप्त ज्वलन्त वाष्प ही वर्तमान था। सभी उष्ण पदार्थों का यह धर्म है कि वे धीरे धीरे ताप त्याग करते रहते हैं। खौलता हुआ पानी पहले भाप बनकर निकल आता है। ठंडा होते होते उस वाष्प के भीतर एक एक कण पानी इकट्ठा होता है। अत्यन्त गर्मी पहुँचाने से कठिन पदार्थ भी गैस हो जाता है; उसी परिमाण में जब गर्मी थी उस समय विश्व के हल्के या भारी सभी पदार्थ गैस के रूप में थे। करोड़-करोड़ वर्ष से वह ठंडा हो रहा है। गर्मी कम होते होते ऐसी अवस्था आई जब उस गैस से छोटे छोटे टुकड़े घन होकर टूट पड़े। यही विपुल संख्यक कण तारों के आकार में दल बाँधकर नीहारिका गठित किये हुए हैं। यूरोपीय भाषा में इसे नेवुला (बहुवचन नेव्यूल) कहते हैं, हमारा सूर्य एक ऐसी ही नीहारिका के अन्तर्गत है।

अमेरिका के एक पर्वत के शिखर पर एक विशाल दूरबीन स्थापित किया गया है, उसकी सहायता से एक बहुत बड़ी नीहारिका दिखाई पड़ी है। आएड्रोमीडा नामक नक्षत्रमंडली के भीतर यह नीहारिका वर्तमान है। इसका आकार बहुत कुछ गाड़ी की पहिए के समान है। यह पहिया घूम रही है। एक-एक चक्कर लगाने में उसे प्रायः दो करोड़ वर्ष लग जाते हैं। इसके पास से पृथ्वी तक प्रकाश आने में साढ़े आठ लाख वर्ष लग जाते हैं।

नक्षत्रों की दूरी के सम्बन्ध में सबसे पहले महाविज्ञानी न्यूटन ने एक अन्दाज़ा लगाया था। उनकी पहली युक्ति यह थी कि नक्षत्र-गण ग्रहों की भाँति सूर्य के चारों ओर नहीं घूम रहे हैं। वे इतने दूर हैं कि सूर्य का आकर्षण उन तक नहीं पहुँच पाता। दूसरी बात यह कि स्वनाम धन्य पुरुषों की नाईं वे अपने ही प्रकाश से प्रकाशित हैं। तीसरा सिद्धान्त यह था कि काल पुरुष के नक्षत्र जितने उज्ज्वल दिख रहे हैं, उतना उज्ज्वल दिखने के लिए सूर्य को, अपनी दूरी से लाखों गुना अधिक दूरी पर जाना पड़ेगा। न्यूटन का हिसाब बिल्कुल ठीक रहा हो, सो बात नहीं है, किन्तु उस समय के लिए यह ख़ूब बड़े ढंग की दूरी का निर्देश दिया गया था।

हमारे सबसे निकट का जो नक्षत्र है, जिसे हम अपने तारा-मुहल्ले का पड़ोसी कह सकते हैं, उसकी दूरी को संख्या से सजाकर समझाने की कोशिश करना बेकार है। संख्या से बँधी हुई जिस दूरी को मोटे तौर पर समझाना हमारे लिए सहज है, वह हमारी पृथ्वी के इस गोलक में ही सीमित है, जिसे हम रेल से, मोटर से या स्टीमर से चलते चलते माप जाते हैं। पृथ्वी को छोड़कर नक्षत्र-बस्ती की सीमा धाँगते ही अंकों की भाषा पागलपन जान पड़ती है। गणित-शास्त्र नाक्षत्रिक हिसाब से संख्या के जो अण्डे देता है वह मानो पृथ्वी के बहूप्रसू (बहुत बच्चा देनेवाले) कीड़ों की ही नक़ल करता है।

साधारणतः हम कोस या मील के हिसाब से ही दूरी की गिनती करते हैं, नक्षत्रों के सम्बन्ध में इसी रीति से काम लें तो अंकों का बोझा ढोना मुश्किल हो जायगा। अव्वल तो सूर्य ही हमारे यहाँ से बहुत दूर है। नक्षत्रों का दल उससे भी लाखों गुना अधिक दूर है। इनकी दूरी का हिसाब अंकों से करना वैसा ही है जैसे कोई कौड़ी से हज़ार हज़ार मोहरों की गिनती करे। संख्या का संकेत बनाकर मनुष्य ने लिखने का बोझा हल्का किया है। हज़ार लिखने के लिए उसे हज़ार लकीरें नहीं खींचनी पड़तीं। किन्तु इस संकेत से ज्योतिष्क-लोक के माप का काम नहीं चलता। इसी लिए एक संकेत खोज निकाला गया है। इसे प्रकाश का माप कह सकते हैं। एक वर्ष में प्रकाश ५,८८,००० करोड़ मील चलता है। सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के घूम आने में जो सौर वर्ष होता है वह जिस प्रकार ३६५ दिनों के माप से मापा जाता है, उसी प्रकार नक्षत्रों की गति विधि, उनकी सीमा और सरहद्दी का माप, प्रकाश की सालाना गति की मात्रा से गिना जाता है। हमारे इस नक्षत्र-जगत् का व्यास अन्दाज़न् एक लाख प्रकाश वर्ष के बराबर है। और लाखों नक्षत्र-जगत् इसके बाहर हैं। उन दूसरे गाँव के नक्षत्रों में से एक का परिचय फोटोग्राफी से मालूम हुआ है, वह प्रायः पचास लाख प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। हमारे सबसे नज़दीकी पड़ोसी नक्षत्र की दूरी चार प्रकाश-वर्ष की है। उसके जिस क्षण का प्रकाश अभी अभी

हमारी आँखों को मिला है, अब तक उसे बीते चार वर्ष हो गये, वह नक्षत्र भी तब से २० करोड़ मील दूर आगे निकल गया है। ऐसा कोई उपाय नहीं कि किसी क़दर समय के इस व्यवधान को पार करके नक्षत्र की वर्तमान ख़बर पाई जा सके।

आँखों से देखने के युग के बाद दूरबीन का युग आया। ज्यों-ज्यों दूरबीन की शक्ति बढ़ती गई त्यों-त्यों द्युलोक में हमारी दृष्टि की परिधि भी बढ़ती गई। पहले जहाँ ख़ाली स्थान दिखता था वहाँ अब नक्षत्रों के झुंड दिखाई दिये। तोभी बहुत कुछ बाक़ी रह गया। बाक़ी तो रहना ही चाहिए। हमारे नक्षत्र-जगत् के बाहर ऐसे जगत् भी हैं जिनकी रोशनी दूरबीन-दृष्टि के भी परे है। एक मामूली बत्ती की शिखा ८,५७५ मील की दूरी पर जितनी रोशनी देती है, ऐसी आभा को भी दूरबीन के योग से पकड़ने की चेष्टा में मनुष्य की आँख हार मान गई। दूरबीन अपनी शक्ति के मुताबिक आँखों को ख़बर पहुँचा देता है, लेकिन आँखों के पास अगर इतनी शक्ति न हो कि उस अत्यन्त क्षीण समाचार को बोध के कोठे तक पहुँचा सके तो उपाय क्या है। किन्तु फोटोग्राफ के फलक (प्लेट) की प्रकाश-ग्राहिणी शक्ति आँखों से कहीं अधिक है। इस शक्ति का उद्बोधन विज्ञान ने किया है, फोटोग्राफ को उसने दूरतम आकाश में जाल फैलाने के लिए नियुक्त किया। ऐसी फोटोग्राफी बनाई जो अंधकार में चुपचाप दुबके हुए प्रकाश पर भी समन जारी कर सके। दूरबीन के साथ फोटोग्राफी और

फोटोग्राफी के साथ वर्णलिपि-यंत्र को जोड़ दिया। आज-कल इसकी शक्ति और भी विचित्र कर दी गई है। सूर्य में अनेकानेक पदार्थ गैस होकर जल रहे हैं। वे सब जब एक साथ मिलकर दिखाई देते हैं तो उन्हें ठोंक-बजाकर देखना संभघ नहीं होता। इसी लिए एक अमेरिकन विज्ञानी ने सूर्य देखनेवाला दूरबीन बनाया है। इससे सूर्य में जलते हुए गैसों के सब प्रकार के रंगों से एक एक प्रकार का रंग अलग निकालकर उसकी सहायता से यह विशेष गैसीय रूप देखना संभव हुआ है। इच्छानुसार केवल मात्र ज्वलन्त कैलसियम के बैंगनी रंग या ज्वलंत हाईड्रोजन के लाल रंग में सूर्य को देख सकने से उसके गैसीय अग्निकाण्ड की अनेक ख़बरें मिल जाती हैं जो और किसी तरफ़ नहीं पाई जा सकतीं।

उजले प्रकाश को विभक्त करने से उसके वर्णसप्तक की एक ओर दिखाई पड़ता है बैंगनी रंग, और दूसरी ओर लाल—इन दो सीमाओं के बाहर जो प्रकाश है, वह हमारी आँखों को नहीं दिखता।

घने नील रंग की तरंगों का परिमाप एक इंच के डेढ़ करोड़ हिस्से का एक हिस्सा है। अर्थात् इस प्रकाश के रंग में जो तरंग लहराती है, उसकी एक तरंग की चूड़ा से परवर्ती तरंग की चूड़ा तक का माप इतना है। लाल रंग के प्रकाश की तरंग ठीक इससे दूनी होती है। एक तपाये हुए लोहे का ज़्वलन्त लाल रंग जब धीरे धीरे बुझता जाता है और

दिखाई नहीं देता उस समय और भी बड़े माप की अदृश्य प्रकाश की तरंग उससे निकलती रहती है। यह तरंग यदि हमारी दृष्टि को जगा सकती तो उस लाल-उजानी रंग के प्रकाश में हम बुझ आते हुए लोहे को देख सकते, फिर ग्रीष्म काल की साँझ को धूप जब अँधेरे में मिल भी जाती तौभी इस लाल-उजानी प्रकाश से पृथ्वी आभासित होकर हमें दिखाई देती।

बिल्कुल अन्धकार जैसी कोई चीज़ दुनिया में नहीं है। हम जिन्हें देख नहीं सकते उनके भी प्रकाश हैं। नक्षत्रलोक के बाहर निविड़ काले आकाश में भी निरंतर नाना प्रकार की किरणें छिटक रही हैं। वर्णलिपियुक्त दूरबीन फोटोग्राफ की सहायता से इन अदृश्य दूतों को भी दृश्य-पट पर खींचकर अनेक गुप्त बातों का पता लगा लिया जाता है।

बैंगनी-पारका प्रकाश लाल-उजानी के प्रकाश की तरह ज्योतिषियों के इतने काम का नहीं होता। इसका कारण यह है कि इस छोटी तरंग का बहुत कुछ पृथ्वी की हवा पार करने में ही नष्ट हो जाता है। और यह दूर के लोक की ख़बर देने लायक नहीं रह जाती। यह तरंग परमाणुलोक की ख़बर देती है। एक विशेष मात्रा की उत्तेजना से परमाणु स्वेत प्रकाश से स्पन्दित होते हैं। तेज और भी बढ़ने पर बैंगनी-पारका प्रकाश दिखाई देता है। और भी बढ़ने पर जो रश्मि निकलती है वही एक्स-रश्मि (एक्स रे) है। अन्त में परमाणु का केन्द्र-वस्तु जब विचलित होता रहता है तो वह और भी छोटी रश्मि

लेकर गामा-रश्मि में जा पहुँचता है। मनष्य ने यंत्र-शक्ति को इतना बढ़ा लिया है कि वह एक्स-रश्मि और गामा-रश्मि जैसी रश्मियों को भी देख और अनुभव कर सकता है।

जो बात कहने जा रहा था वह यह है कि वर्णलिपि-युक्त दूरबीन-फोटोग्राफ की सहायता से मनुष्य नक्षत्र-विश्व के अति दूरवर्ती अदृश्य लोक को भी दृष्टि मार्ग में ले आया है। हमारे अपने नक्षत्र लोक से दूर बाहर के अनेक नक्षत्र-लोकों का पता लगा है। केवल यही नहीं, इस यंत्र की दृष्टि में यह बात भी पड़ी है कि वे सब मिलकर हमारे नक्षत्र आकाश में और दूर-तर आकाश में चक्कर काट रहे हैं।

दूर आकाश में कोई ज्योतिर्मय गैस का पिण्ड, जिसे नक्षत्र कहते हैं, जब हमारी ओर बढ़ता आता है या दूर हटता जाता है तब हमारी दृष्टि में एक विशेषता आ जाती है। वह पिण्ड स्थिर रहकर जितनी लम्बी प्रकाश की तरंग हमारे पास पहुँचा सकता, नज़दीक आते रहने पर उससे अधिक और दूर हटते रहने पर उससे कम पहुँचाता है। जिन सब प्रकाशों की तरंग संख्या में ज्यादा और लंबाई में कम होती हैं, उनका रंग वर्ण-सप्तक में बैंगनी की ओर दिखाई देता है। इसी लिए नक्षत्रों के नज़दीक आने और दूर जाने का संकेत भिन्न भिन्न रंगों के सिगनल से वर्णलिपि बता दिया करती है। दूर हटने की ख़बर देता है लाल रंग और नज़दीक आने की ख़बर बैंगनी रंग। सीटी बजाती हुई रेलगाड़ी जब पास से निकल जाती है तो

उसकी आवाज़ कानों को अधिक मालूम होती है। क्योंकि सीटी हवा में तरंग उठाकर शब्द हमारे कानों तक पहुँचाती रहती है वही गाड़ी के नज़दीक आने पर तरंगों के पुंजीभूत होने के कारण ज़ोर की अनुभूति उत्पन्न करती है। प्रकाश में अधिक रंग का सप्तक बैंगनी का है।

नीहारिका में जो उज्ज्वलता है वह उसके अपने प्रकाश के कारण नहीं है। जो नक्षत्र उसमें भीड़ किये हुए हैं वे ही उसे आलोकित कर रहे हैं। ठीक उस तरह से नहीं, जिस तरह चाँद को सूर्य आलोकित करता है। अर्थात् नक्षत्र का प्रकाश नीहारिका से टकराकर नहीं आ रहा है। नीहारिका के परमाणु नक्षत्र के आलोक को सोख लेते हैं और फिर भिन्न प्रकार की लंबाई के प्रकाश के रूप में उनकी रफ़तनी कर देते हैं।

नीहारिका में और एक प्रकार की विशेषता दिखाई देती है। उसके भीतर बीच बीच में मेघ की तरह काला काला पुता हुआ-सा दिखता है, निविड़तम तारिकाओं की भीड़ में स्थान स्थान पर काले काले ख़ाली स्थान हैं। ज्योतिषी बर्नर्ड के पर्यवेक्षण से आकाश में इस प्रकार के प्रायः दो सौ काले धब्बे दिखाई पड़े हैं। बर्नर्ड का अनुमान है कि ये धब्बे अस्वच्छ गैस के मेघ हैं जो अपने पीछे के नक्षत्रों को ढके हुए हैं। इनमें कुछ नज़दीक हैं, कुछ दूर, कोई कोई छोटे हैं और कोई कोई बहुत विशाल।

नक्षत्र-लोक के पश्चाद्वर्ती आकाश में जो वस्तुपुञ्ज छितराये

हुए हैं उनकी निविड़ता का हिसाब करने से जाना जाता है कि वह बहुत ही कम है, प्रत्येक घन इंच में सिर्फ़ आधे दर्जन परमाणु। यह कितना कम है यह बात इसीसे समझी जा सकती है कि विज्ञान के परीक्षागार में सबसे अधिक शक्तिशाली पम्प के द्वारा जो शून्यता निर्माण की जाती है उसके भीतर भी एक घन इंच में कई करोड़ परमाणु रह ही जाते हैं।

हमारा अपना नक्षत्र-लोक एक चिपटा चक्कर खाया हुआ जगत् है जिसमें लाखों नक्षत्र भरे पड़े हैं। उनके बीच बीच में जो आसमान है उसमें अति सूक्ष्म गैस कहीं तो अत्यन्त विरल और कहीं अपेक्षाकृत घन है, कहीं उज्ज्वल और कहीं अस्वच्छ है। हमारा सूर्य इस नक्षत्र-लोक के केन्द्र से दूर एक प्रान्त में स्थित एक नक्षत्र मेघ के भीतर है। नक्षत्रों की अधिक भीड़ नीहारिका के केन्द्र के पास होती है।

सेंटावेस नक्षत्र का व्यास उन्तालीस करोड़ मील है और सूर्य का आठ लाख चौंसठ हज़ार मील। सूर्य मझोले आकार का ही तारा माना जाता है। जिस नाक्षत्र जगत् का एक मध्यवित्त तारा यह सूर्य है उसके समान और भी लाख-लाख जगत् विद्यमान हैं। सब मिलाकर जो यह ब्रह्माण्ड है उसकी सीमा कहाँ है, यह हम नहीं जानते।

हमारा सूर्य अपने सब ग्रहों को लेकर चक्कर मार रहा है और उसके साथ ही साथ इस नाक्षत्र चक्रवर्ती के सब तारे चक्कर मार रहे हैं,—एक ही केन्द्र के चारों ओर। चक्र-प्रवाह के

आकर्षण से सूर्य का गति वेग एक सेकेन्ड में दो सौ मील है। घूमती हुई पहिया से छिटके हुए पंक की तरह यह (सूर्य) भी नक्षत्रचक्र में से छिटक पड़ता, किन्तु इस चक्र के हज़ार करोड़ नक्षत्र उसे खींचकर पकड़े हुए हैं और मर्यादा के बाहर नहीं जाने देते।

इस आकर्षण-शक्ति की ख़बर निश्चय ही पाठकों की जानी हुई है, तौभी उसे इस विश्ववर्णना में से निकाल देने से काम नहीं चलने का।

सच हो या झूठ, एक कहानी मशहूर है कि विज्ञानी श्रेष्ठ न्यूटन ने एक दिन देखा कि एक सेब का फल दरख़्त से गिरा। उसी समय उनके मन में लगा कि फल नीचे ही क्यों आया, ऊपर क्यों नहीं उड़ गया। सोचकर उन्होंने देखा कि पृथ्वी सब कुछ को अपनी ओर खींच रही है, उसमें खींचने की एक शक्ति है। इस शक्ति का नाम रखा गया Power of Gravitation. जिसे हिन्दी में 'महाकर्ष' कह सकते हैं। जिसमें वस्तु-परिमाण जितना ही अधिक है उस पर पृथ्वी का आकर्षण उतना ही ज़्यादा लग रहा है। केवल पृथ्वी ही क्यों, ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं है जो खींचता नहीं। यह ज़रूर है कि खींचने कि शक्ति किसी में अधिक है किसी में कम। इस के सिवा दूरत्व की कमी ज़्यादती से इस खिंचाव की भी कमी ज़्यादती होती है। जिसका वस्तु-परिमाण दुगुना है, वह दुगुनी ताक़त से खींचता है पर अगर दूरी भी दुगुनी हो जाय तो खिंचाव

चौगुना कम हो जाता है। दूरी और चौगुनी हो तो खिचाव १६ गुना कम हो जाता है। ऐसा अगर न होता तो सूर्य के आकर्षण से बचकर पृथ्वी पर कुछ बच रहना कठिन होता। इस खींचतान की पहलवानी में नज़दीक की चीज़ों पर पृथ्वी की ही जीत रह गई है।

दो विपरीत परमाणुओं के मिलन से जिस जगत् की रचना हुई है उसमें दो सर्वव्यापी विरुद्ध शक्तियों की क्रिया चल रही है, चलना और खींचना, मुक्ति और बन्धन। एक तरफ़ तो ब्रह्माण्ड-व्यापी महा दौड़ और दूसरी तरफ़ ब्रह्माण्डव्यापी महा खिंचाव। सभी चल रहे हैं और सभी खींच रहे हैं। चलना क्या है और कहाँ से आता है, यह भी मालूम नहीं और खींचना क्या है और कहाँ से आता है, यह भी मालूम नहीं। आज के विज्ञान में वस्तु का वस्तुत्व अत्यन्त क्षीण हो आया है, यह चलना और खींचना ही सबसे अधिक प्रबल होकर दिखाई पड़ता है। अगर अकेला चलना ही होता तो वह सीधे रास्ते में ही चलता रहता जिसका कोई ओर होता न छोर। आकर्षण उसे घुमा-फिराकर सान्त सीमा में ले जाता है, और चक्र-पथ में घुमाया करता है। सूर्य एवं ग्रहों के बीच लाखों मील का व्यवधान है, उस दूरत्व की शून्यता पार करके निरन्तर अशरीरी आकर्षण की शक्ति चल रही है। इधर सूर्य भी बहु कोटि भ्राम्यमान नक्षत्रों से बने हुए एक महा ज्योतिष्क के आकर्षण से चक्कर मार रहा है। विश्व की अणीयसी गति शक्ति की ओर

देखो, वहाँ भी विराट् चलन—और विराट् आकर्षण की एक ही छन्दोलीला चल रही है। सूर्य तथा अन्य ग्रहों के बीच में जो दूरी है, तुलना करके देखा गया है कि अति परमाणु-जगत् के प्रोटन और इलेक्ट्रनों की दूरी प्रायः उसी अनुपात में है। आकर्षण का जोर उस शून्य को पार करके इलेक्ट्रनों के दल को नित्य काल के अभ्यस्त मार्ग पर घुमा रहा है। यहाँ एक बार फिर से कह रखना जरूरी है कि इलेक्ट्रन और प्रोटन में जो परस्पर का आकर्षण है वह महाकर्ष-संबंधी नहीं है, वह वैद्युत का आकर्षण है। परमाणुओं के अन्तर का आकर्षण वैद्युत का आकर्षण है, और बाहर का आकर्षण महाकर्ष का, जैसे मनुष्य के घर का खिंचाव आत्मीयता का खिंचाव है और बाहर का समाज-संबंधी।

हमारा यह नाक्षत्र जगत् मानो विराट् शून्य के भीतर अवस्थित एक द्वीप है। यहाँ से दूर दूर और अनेक नाक्षत्र द्वीप दिखाई देते हैं। इन द्वीपों में जो हमारे सबसे निकट है वह आण्ड्रोमीडा नक्षत्रपुंज के पास दिखाई देता है। देखने में यह एक धुँधले तारे जैसा लगता है, वहाँ से जो प्रकाश दिखाई देता है वह नौ लाख वर्ष पहले यात्रा को निकल चुका था। कुण्डलीभूत नीहारिकायें और भी हैं, और भी अधिक दूरी पर। उनमें जो सबसे दूरवर्ती है उसके विषय में हिसाब लगाकर देखा गया है कि वह ३००००००००० प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। इन सब नाक्षत्र जगतों की संख्या जिनमें कोटि कोटि नक्षत्र जमा हुए हैं, सौ करोड़ से कम न होगी।

आज कल एक आश्चर्य की बात चल रही है। वह यह कि नज़दीक के दो तीन को छोड़कर बाकी नाक्षत्र जगत हमारे पास से क्रमशः दूर हटते ही जा रहे हैं। वे जितनी ही अधिक दूरी पर हैं, उनके दौड़ने का वेग भी उतना ही अधिक है। इन सब नाक्षत्र जगतों से बने हुए जिस विश्व को हम जानते हैं वह, किसी किसी पंडित के मत से, निरन्तर फूलता जा रहा है। इसलिए वह जितना ही फूलता है उतना ही नक्षत्र-पुंज के परस्पर का दूरत्व बढ़ता जा रहा है। जिस तेज़ी से वे हट रहे हैं उसके हिसाब से और भी १३० करोड़ वर्ष बीतने पर उनकी पारस्परिक दूरी आज की अपेक्षा दुगुनी बढ़ जायगी।

अर्थात् इस पृथ्वी के भूगठन में जो समय लगा है उतनी देर में नक्षत्र-विश्व आगे की अपेक्षा दुगुना फूल गया है।

केवल यही नहीं, एक दल विज्ञानियों के मत से इस वस्तु-पुंज संगठित विश्व के साथ ही साथ गोलक रूपी आकाश भी विस्फारित होता जा रहा है। इनके मत से शून्य आकाश के किसी एक बिंदु से अगर एक सीधी लकीर खींची जाय तो वह असीम में न चली जाकर फिर उसी बिंदु पर आ मिलती है। इसका मतलब यह हुआ कि आकाश गोलक में नक्षत्रों के जगत् उसी प्रकार घेरे हुए हैं जिस प्रकार पृथ्वी गोलक को जीव-जन्तु और वृक्ष लतायें। इसी लिए इस विश्व जगत् का फूल उठना उस आकाश-मण्डल के विस्फोरण के माप पर ही है। किन्तु यह याद रखना चाहिए कि इस मत का

स्थापन अभी पूर्ण रूप से नहीं हुआ है। आकाश असीम है, काल भी निरवधि है, यह मत ही प्रबल होता जा रहा है। आकाश बुद्बुद की तरह है या नहीं, इस विषय पर अनेक मत बुद्बुद की तरह ही उठे और विलीन हो गये। इस प्रसंग में हमारे शास्त्रों का मत यह है कि सृष्टि प्रलय की ओर जा रही है। उसी प्रलय से फिर नूतन सृष्टि उद्भासित हो रही है, उसी प्रकार जैसे नींद और जागरण बारी बारी से आते रहते हैं। अनादि काल से सृष्टि और प्रलय का पर्याय दिन और रात की तरह बारी बारी से आ रहा है, इस कल्पना को मन में लाना ही सहज है।

पर्सियुस राशि में ऐलगल नामक एक उज्ज्वल नक्षत्र है। उसकी उज्ज्वलता ६० घंटे तक स्थिर रहती है। उसके पाँच घंटे बाद उसकी प्रभा एक तिहाई कम हो जाती है। इसके बाद फिर उज्ज्वल होने लगता है। पाँच घंटे बाद पूर्ण उज्ज्वलता आ जाती है, यह पूर्ण ऐश्वर्य साठ घंटे तक रहता है। इस उज्ज्वलता का कारण उसका जोड़ीदार नक्षत्र है। प्रदक्षिण के समय क्षण-क्षण पर ग्रहण लगता और छूटता रहता है।

और एक प्रकार के नक्षत्र हैं जिनकी दीप्ति किसी बाहरी कारण से नहीं बल्कि भीतर के ही किसी ज्वार भाटे से घटती बढ़ती रहती है। कुछ दिन तक समस्त तारा विस्फारित और फिर संकुचित हो जाता है। उसका प्रकाश मानो नाड़ी की धड़कन है।

और एक प्रकार के नक्षत्रों की बात कहनी है। इन्होंने नाम पाया है, नये तारे। इनका प्रकाश एक अत्यन्त तेजी के साथ उज्ज्वल हो जाता है, हजार गुने से लेकर लाख गुने तक। इसके बाद धीरे धीरे अत्यन्त म्लान हो जाता है, एक समय इन एकाएक जल उठनेवाले तारों के आविर्भाव को नया आविर्भाव समझकर इन्हें नाम दिया गया था, नये तारे।

कुछ दिन पहले, गत वर्ष, लासेर्टा अर्थात् गोधिका नामधारी नक्षत्र राशि के पास एक ऐसा ही नक्षत्र, जिसे नया तारा कहते हैं एकाएक अत्यन्त उज्ज्वल हो उठा। एक एक करके चार छिलके उसने उतार फेंके। देखा गया कि इसके उतरे हुए छिलके एक सेकेन्ड में २२०० मील के वेग से दौड़ पड़े। यह नक्षत्र प्रायः २६०० प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। अर्थात् इसके गैस-ज्वलन का यह उत्पतन जो आज हमारी आँखों को दिखाई दिया है, ईसामसीह के जन्म के ६॥ सौ वर्ष पहले घटित हुआ था। उसके इन उतार फेंके हुए छिलकों का क्या हुआ, इस विषय का अनुमान लगाया जा रहा है। वह क्या उसका बन्धन काट-कर महाशून्य में विरागी होते जा रहे हैं, या उसी के आकर्षण में बँधकर उसके अनुगत होते जा रहे हैं। यह जो तारों का जल उठना है, इस घटना पर विचार करते हुए किसी किसी पंडित ने कहा है कि सम्भवतः नक्षत्र के इसी प्रकार के विस्फो-रण से ग्रहों की उत्पत्ति होती है। ख़ूब संभव, सूर्य ने भी एक दिन इसी प्रकार नये तारों की रीति अनुसरण करके अपने

उत्सारित विच्छिन्न अंशों से ही ग्रहरूपी सन्तानों को जन्म दिया था। यह मत अगर ठीक हो तो सम्भवतः प्रत्येक प्राचीन नक्षत्र को एक दिन विस्फोरण की अवस्था प्राप्त होती है और इस प्रकार ग्रह वंश की सृष्टि होती है। शायद आकाश में कम ही नक्षत्र निःसन्तान हैं।

दूसरा मत यह है कि बाहर का एक चला आता हुआ तारा परस्पर के आकर्षण के इलाक़े में आकर इस प्रलय काण्ड के घटाने में सहायक हुआ है। इस मत के अनुसार पृथ्वी की उत्पत्ति की आलोचना बाद में की जायगी।

हमारे नाक्षत्र जगत् के नक्षत्र नाना जाति के हैं। कोई-कोई सूर्य से दश हज़ार गुना अधिक प्रकाश देता है, और कोई कोई सौवें हिस्से का एक हिस्सा। किसी किसी का पदार्थपुञ्ज बहुत घन है और किसी का अत्यन्त पतला। किसी के ऊपरी सतह की ताप-मात्रा ३० हज़ार सेन्टीग्रेड है, किसी किसी का तीन हज़ार सेन्टीग्रेड से अधिक नहीं, कोई कोई बार बार प्रसारित और कुञ्चित होते होते आलोक और उत्ताप का ज्वार भाटा उठा रहे हैं, कुछ अकेले चल रहे हैं और कुछ झुंड बाँधकर। इनकी संख्या नक्षत्र-दल की एक तिहाई है। जोड़े नक्षत्र महाकर्ष के जाल में फँसकर प्रदक्षिण का अभिनय कर रहे हैं। जोड़े में जिसके आकर्षण की ताक़त कम है, उसी के सिर पर प्रदक्षिण की जवाबदेही पड़ती है। बिचारी अबला पृथ्वी कुछ खींच ही न रही हो सो बात नहीं है; किन्तु सूर्य को

बहुत अधिक विचलित नहीं कर सकती। प्रदक्षिण का सारा अनुष्ठान अकेली पृथ्वी को ही करना पड़ता है। जहाँ दो ज्योतिष्कों के आकर्षण की शक्ति प्रायः बराबर है वहाँ बीच में लक्ष्य स्थिर रखकर दोनों ही उसी लक्ष्य की प्रदक्षिणा करते हैं।

किसी किसी जोड़े को प्रदक्षिण का एक चक्कर लगाने में कई हज़ार वर्ष लग जाते हैं; कभी देखा जाता है, चक्कर देते देते एक ने दूसरे को हमारी दृष्टि के पथ से आड़ में कर दिया, इस प्रकार उज्ज्वलता में बाधा देता है। किन्तु ओट में करने-वाला नक्षत्र अपेक्षाकृत अनुज्ज्वल न होता तो उज्ज्वलता में बाधा न पड़ती। नक्षत्रों में एक दूसरे की उज्ज्वलता में काफ़ी भेद है। किसी नक्षत्र में, ऐसा भी होता है कि, अपनी सब दीप्ति खो दी। प्रकाण्ड आयतन और प्रचण्ड उत्ताप लेकर जो नक्षत्र अपनी बाल्य दशा शुरू करते हैं, वे पहले उजले होते हैं, बाद में कुछ पीलापन लिये हुए और तीन पन बीत जाने पर लाल हो जाते हैं। इसके बाद और भी ठंडा हो जाने पर ख़रच करने लायक़ जो कुछ प्रकाश की पूँजी रहती है उसे भी फूँक बैठते हैं। अन्तिम अवस्था में ये दिवालिये नक्षत्र अख्यात अन्ध-कार में वास करते हैं।

बेटेलजियुस नामक एक महाकाय नक्षत्र है, उसकी लाल रोशनी देखने से जान पड़ता है कि उसकी उमर काफ़ी बड़ी हो चुकी है, फिर भी वह झिलमिला रहा है। हाल ही में ख़बर मिली है कि यह तारा वृद्ध नहीं, बालक है। हमारा सूर्य

इसकी अपेक्षा प्रौढ़ है। फिर वह है बहुत दूर, पृथ्वी तक उसका प्रकाश आने में १९० वर्ष लगते हैं। असल बात यह है कि इसका आयतन अति विशाल है, अपने शरीर में करोड़ों सूर्यों को स्थान दे सकता है। उधर वृश्चिक राशि में ऐन्टारेस् नामक एक नक्षत्र है, उसका आयतन बेटेलजियुस से भी प्रायः दुगुना है। फिर ऐसे भी नक्षत्र हैं जो हैं तो गैसमय; परन्तु वज़न में लोहे से भी भारी हैं।

महाकाय नक्षत्र इसलिए बड़े नहीं हैं कि उनका वस्तु-परिमाण बहुत अधिक है, वे सिर्फ़ बहुत अधिक फूल उठे हैं। फिर ऐसे अनेक छोटे नक्षत्र हैं जिनकी छुटाई के कारण उनके गैस का सम्बल ठूँस-ठूँसकर बाँधे हुए गट्ठर की तरह है। सूर्य का घनत्व इनके बीच का है, अर्थात् पानी से कुछ ज्यादा। कैपेला नक्षत्र का औसत घनत्व हमारी हवा के समान है। लेकिन वहाँ अगर हम हवा बदलने की बात सोचें तो याद रखना होगा कि परिवर्तन अत्यन्त अधिक होगा। उसके ताप की मात्रा ३० लाख सेन्टीग्रेड के आसपास है। इन सबको मात कर गया है कालपुरुष मंडली का दानव नक्षत्र बेटेलजियुस और वृश्चिक राशिवाला ऐन्टारेस्। इनका घनत्व इतना अधिक कम है कि पृथ्वी के किसी पदार्थ के साथ उनकी सुदूर तुलना भी नहीं हो सकती; विज्ञान की प्रयोगशाला में ख़ूब खींचकर पम्प किये हुए पात्र में जितनी कुछ गैस बची रह जाती है उसी के समान।

फिर दूसरे किनारे पर उजले रंग के ठिंगने तारे हैं। उनके घनत्व के निकट लोहा या प्लैटिनम कुछ भी नहीं पहुँच सकते। फिर भी ये जमकर कठिन नहीं हो गये हैं, ये सब गैस-देही सूर्य के ही सगोत्र हैं। तारों की भीतरी दुनिया में जलने की जो प्रचण्ड आँच है उससे इलेक्ट्रन गण प्रोटन के बन्धन से विच्छिन्न हो जाते हैं, और ताबेदारी की जवाबदेही से छुट्टी पा जाते हैं,—दोनों दोनों का मान बचाकर चलते तो जो अन्तर रह जाता वह कम हो जाता है, इस प्रकार उच्छृंखल परमाणुओं में निरन्तर सिर फुड़ौवल चलती रहती है। परमाणु की इसी आयतन की छुटाई के अनुसार नक्षत्र का आयतन भी छोटा हो जाता है। इधर इस तोड़-फोड़ के ग़ैर क़ानूनी शान्ति-भंग से गर्मी बढ़ जाती है, जो सहज मात्रा को छोड़ जाती है, और फिर घन गैस प्लेटिनम से भी तीन हज़ार गुना भारी हो जाता है। इसी लिए ठिंगने तारे माप में छोटे होते हैं, पर ताप में नहीं, और वज़न की मर्यादा में भी बड़ों को मात देते हैं। सीरियस नक्षत्र में एक अस्पष्ट संगी तारा है। उसका माप तो साधारण ग्रहों के समान छोटा है, परन्तु उसके वस्तुः पुंज का परिमाण सूर्य के ही समान है। सूर्य का घनत्व जल के ड्योढ़े से कुछ कम है। पर सीरियस के संगी का औसत घनत्व जल के पचास हज़ार गुना है। एक दियासलाई की डिबिया में इसका गैस भरा जाय तो उसका वज़न पचास मन से भी अधिक होगा। और फिर पर्सियस नक्षत्र के छोटे साथी

का उसी मात्रा का पदार्थ वज़न में क़रीब दस हज़ार मन से भी अधिक होता।

हमारे नाक्षत्र-जगत् के नक्षत्रों के दल, कोई पूर्व में, कोई दक्षिण में, नाना तरह के मार्गों से चल रहे हैं। सूर्य सेकेण्ड में बारह मील के वेग से दौड़ रहा है, एक दानव तारा है जिसके दौड़ने का वेग प्रतिसेकेण्ड सात सौ मील है। किन्तु अचरज की बात यह है कि इनमें का कोई भी नाक्षत्र जगत् के शासन की अवज्ञा करके बाहर जाकर ग़ायब नहीं हो जाता। एक महाकर्ष के महाजाल में करोड़ों नक्षत्रों को बाँधकर यह जगत् लट्टू की भाँति चक्कर मार रहा है। हमारे नाक्षत्र-जगत् के बाहर के दूरवर्ती जगत् में भी यह आवर्तनृत्य जारी है। इधर परमाणु-जगत् के अणुतम आकाश में प्रोटन और इलेक्ट्रन का चक्कर मारना चल रहा है। इसी लिए हमारी भाषा में इस विश्व को जगत् कहते हैं। अर्थात् यह चल रहा है, यही इसकी संज्ञा है—चलने से ही इसकी उत्पत्ति है, चलना ही इसका स्वभाव।

नाक्षत्र जगत् के देश काल का परिमाप, परिमाण, दूरत्व और उसके अग्नि आवर्त की चिन्तनातीत प्रचण्डता को देखकर जितना भी विस्मव क्यों न मालूम हो, यह बात माननी ही पड़ेगी कि इस विश्व में सबसे बड़े आश्चर्य का विषय यह है कि मनुष्य उसे जान रहा है, और अपनी आशु जीविका के प्रयोजन को अतिक्रम करके उन्हें जानने जा रहा है। क्षुद्र से भी क्षुद्र क्षणभंगुर उसका देह है, विराट् विश्व-संस्थिति के अणुमात्र

स्थान में उसका वास है, फिर भी असीम के नैकट्य-प्राप्त विश्व ब्रह्माण्ड के दुष्परिमेय वृहत् और दुरधिगम्य सूक्ष्मत्व का हिसाब वह जानता है—इससे अधिक आश्चर्य की महिमा इस विश्व में कुछ भी नहीं; या विपुल सृष्टि के निरवधि काल में क्या पता कि और किसी लोक में और किसी चित्त को अधिकार करके और कोई भाव प्रकाशित हो रहा है या नहीं। किन्तु इस बात को मनुष्य ने सिद्ध कर दिया है कि भूमा बाहर के आयतन में भी नहीं है, परिमाण में भी नहीं है, कहीं है तो वह अन्तर की परिपूर्णता में है।

सौरजगत्

नक्षत्र-गण एक दूसरे से करोड़ों मील दूर रहकर घूम रहे हैं इसलिए यह प्रायः निश्चित है कि उनमें परस्पर धक्का लगना संभव नहीं। किसी किसी का अनुमान है कि प्रायः दो सौ करोड़ वर्ष पहले ऐसी ही एक दुःसम्भव घटना हो गई थी। उस युग के सूर्य के निकट एक विशाल नक्षत्र आ पहुँचा था। इस नक्षत्र के आकर्षण से सूर्य के भीतर प्रचण्ड वेग से अग्निवाष्प के ज्वार की तरंगें लहरा उठी थीं। अन्त में आकर्षण के वेग से कोई कोई तरंग इतनी बढ़ी कि अन्त में टूटकर बाहर निकल आई। ख़ूब संभव, उस बड़े नक्षत्र ने इनमें से कइयों को आत्मसात् कर लिया होगा, बाक़ी टुकड़े सूर्य के प्रबल आकर्षण से खिचकर उसी के चारों ओर चक्कर काटने लगे। उन्हीं छोटे-बड़े ज्वलन्त वाष्प के टुकड़ों से ग्रहों की उत्पत्ति हुई; पृथ्वी उनमें से एक है। ये टुकड़े क्रमशः तेजोहीन और सर्द होकर ग्रह का आकार धारण कर गये। आकाश के नक्षत्रों की दूरी संख्या और गति का हिसाब करके देखा गया है कि प्रायः ५-६ हज़ार करोड़ वर्ष में एक बार ऐसा उत्पात हो भी सकता है। ग्रह-सृष्टि के इस मत को मान लिया जाय तो कहना होगा कि ग्रह-परिचयवाली नक्षत्र-सृष्टि इस विश्व में प्रायः अघटनीय

घटना ही है। किन्तु, ब्रह्माण्ड की अण्ड-गोलक सीमा के निरन्तर फूल उठने से नक्षत्र-गण क्रमशः एक दूसरे के पास से दूर हटते जा रहे हैं, यह मत यदि मान लिया जाय तो मानना पड़ेगा कि पूर्व युग में जब आकाश-गोलक संकीर्ण था उस समय ताराओं का परस्पर टकरा जाना प्रायः सम्भव होता रहता होगा। उन नक्षत्रों के मेले की भीड़ के समय अनेक नक्षत्रों के छिन्न अंश से ग्रहों की उत्पत्ति की सम्भावना थी, यह बात युक्ति-संगत है। फिर ऐसा मान लेना होगा कि जिस अवस्था में हमारा सूर्य किसी अन्य सूर्य से टकराया होगा वह अवस्था उस संकुचित विश्व के काल में आज के समान दुःसम्भव नहीं थी। जिन लोगों ने यह मत नहीं मान लिया, उनमें से अनेकों का कहना है कि प्रत्येक नक्षत्र के विकास की विशेष अवस्था में क्रमशः एक ऐसा समय आता है, जिस समय वह पके सेमर के फल की भाँति फटकर प्रचण्ड वेग से अपने चारों ओर ढेर का ढेर अग्नि-वाष्प बिखेर देते हैं। किसी किसी नक्षत्र से अचानक इस प्रकार का ज्वलन्त गैस निकलते हुए देखा गया है। एक छोटा-सा नक्षत्र था, कई वर्ष पहले तक उसे दूरबीन की सहायता के बिना नहीं देखा जा सका था। एक बार अचानक वह दीप्ति में आकाश के उज्ज्वल नक्षत्रों के प्रायः समान हो उठा। फिर कुछ महीने बाद उसका प्रताप इतना क्षीण हो गया कि पहले के समान ही उसे दूरबीन बिना देखा ही न जा सका। उज्ज्वल अवस्था में थोड़े समय में इस नक्षत्र ने चारों ओर पुञ्ज-पुञ्ज

ज्वलन्त वाष्प बिखेर दिये, और वे ही धीरे-धीरे बड़े होकर जम गये। इस प्रकार इसके द्वारा ग्रह-उपग्रहों की सृष्टि हुई, यह अनुमान करना असंगत नहीं है। यह मत अगर मान लिया जाय तो कहना होगा कि करोड़-करोड़ नक्षत्र इस अवस्था के भीतर से गुज़र चुके हैं; अतएव सौरमण्डल की भाँति ही अपने अपने ग्रहों के दल लेकर कोटि-कोटि नक्षत्र-जगत् इस विश्व को पूर्ण किये हुए हैं। पृथ्वी के सबसे निकट जो नक्षत्र है, अगर उसके भी ग्रह-मण्डली हो तो उसे देखने के लिए जितने बड़े दूरबीन की ज़रूरत है, वह अब तक तैयार नहीं हुआ है।

कुछ ही दिन हुए केम्ब्रिज के एक तरुण पण्डित ने सौरजगत् की सृष्टि के सम्बन्ध में एक मत का प्रचार किया है। पहले ही कहा है कि आकाश में अनेक युग्म नक्षत्र हैं, जो एक दूसरे की प्रदक्षिणा कर रहे हैं। इनके मत से हमारे सूर्य का भी एक जोड़ा था। एक घुमक्कड़ अवारे ज्योतिष्क पिण्ड ने सूर्य के उस अनुचर को एक धक्का मारा और उसे अनेक दूर छिटकाकर चलता बना। उसके जाते-जाते भी परस्पर के आकर्षण से ज्वलन्त वाष्प का एक बहुत बड़ा आकृष्ट सूत्र निकल आया था; उसके भीतर इन दोनों की उपादान सामग्री मिली हुई थी। इस वाष्प-सूर्य का जो अंश सूर्य के प्रबल आकर्षण से रुक गया था, उसी गिरफ़्तार गैस से हमारी ग्रहमण्डली पैदा हुई है। आयतन में छोटे होने के कारण इनके ठंडे होने में भी देर नहीं लगी; ताप कम होते-होते गैस के टुकड़े पहले तरल हुए, फिर और

ठंडे होने पर उनका बाहरी भाग जमकर कड़ा हो गया। लेकिन भीतरी भाग अब भी उष्ण-तरल गैसीय पदार्थों से भरा है।

कहना आवश्यक है कि सूर्य का सब कुछ गैस है। पृथ्वी के जो सब उपादान मिट्टी, धातु, पत्थर आदि के रूप में हैं उनमें का सब कुछ सूर्य में प्रचण्ड उत्ताप के कारण गैस की अवस्था में है। किरीटिका के अति सूक्ष्म गैस-आवरण की बात पहले ही कही गई है। उस स्तर को भेद करके जितना ही जाया जायगा उतनी ही घनतर गैस और उष्णतर ताप दिखाई देगा। अन्त में ऐसे स्तर पर पहुँचना पड़ेगा जहाँ ठसा-ठस भरे हुए गैस में स्वच्छता नहीं रह जाती। इस स्थान पर दस हज़ार फारेनहाइट डिग्री का ताप है। इस आलोड़ित स्तर को जितना ही भेद करते जायेंगे उतना ही घनत्व और ताप बढ़ता जायगा। अन्त में केन्द्र में १ करोड़ ५० लाख डिग्री का ताप मिलेगा। इस स्थान पर सूर्य का देह-वस्तु लोहे और पत्थर से कहीं अधिक घना है फिर भी वह गैस-धर्मी है। इतने उत्ताप में सूर्य का सारा गैस एक्स-रश्मि में बदल जाता है। वहाँ एक्स-रश्मि प्रकाश की चाल से दौड़ती है और छिन्न-बन्धन इलेक्ट्रनगण एक सेकेण्ड में दस हज़ार मील की तेज़ी से भागते हैं। परमाणुओं में प्रायः सभी हाईड्रोजन के हैं जिनके इलेक्ट्रन खो गये हैं, अर्थात् सभी प्रोटन हैं—वे एक सेकेण्ड ३ सौ मील के वेग से दौड़ते हैं। और इनके बीच बीच में लोहे आदि के भारी परमाणु मन्द गति से लड़खड़ाते

हुए एक सेकेण्ड में सिर्फ़ चालीस मील के वेग से दौड़ते रहते हैं।

सूर्य की दूरी की बात अंक से कहने की कोशिश न करके एक काल्पनिक व्याख्या से बता दूँ। हमारे शरीर में जो अनुभूतियाँ घटित हो रही हैं, उनकी ख़बर फैलाने की व्यवस्था हमारी असंख्य स्पर्श नाड़ियाँ कर रही हैं। ये नाड़ियाँ हमारे शरीर में व्याप्त होकर मस्तिष्क में जा मिली हैं। टेलिग्राफ के तार की तरह उनके योग से मस्तिष्क को ख़बर पहुँचती है। हम समझ सकते हैं कि चींटी ने कहाँ काटा है, जीभ में जो खाद्य पदार्थ लगा वह मीठा है, दूध का जो कटोरा हाथ में उठाया है वह गर्म है। हमारा शरीर हावड़ा से लेकर बर्दवान तक फैला हुआ विशाल नहीं है, इसी लिए ख़बर लगने में देरी नहीं होती, तौ भी बहुत थोड़ा-सा समय लग ही जाता है; वह इतना कम है कि उसका मापना कठिन है। किन्तु पंडितों ने उसे भी मापा है। उन्होंने परीक्षा करके स्थिर किया है कि मनुष्य के शरीर के भीतर से दैहिक घटना प्रतिसेकेन्ड चार सौ फ़ीट के वेग से अनुभूति तक पहुँचती है। अच्छा, अब क़ल्पना करें कि एक ऐसा दैत्य है जो पृथ्वी पर से हाथ बढ़ावे तो उसका हाथ सूर्य तक पहुँच सके। उस दुःसाहसी दैत्य का हाथ जितना भी मज़बूत क्यों न हो सूर्य का शरीर स्पर्श करते ही जलकर भस्म हो जायगा। किन्तु जलने की जो पीड़ा और क्षति है उसकी ख़बर नाड़ियों की सहायता से

उसके दिमाग तक आते-आते प्रायः ४० वर्ष लग जायँगे। उसके पहले ही अगर वह मर जाय तो उसे पता ही नहीं लगेगा।

सूर्य का व्यास ८ लाख ६६ हज़ार मीलों का है। ११० पृथ्वी एक सीधी रेखा में सटा-सटाकर रखें, तो सूर्य के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक पहुँच सकती हैं। सूर्य का वज़न पृथ्वी से ३ लाख ३० हज़ार गुना है। इसी लिए उसी मात्रा के वज़न की ताक़त से वह अपनी ओर खींच सकता है। इस आकर्षण के बल पर सूर्य पृथ्वी को अपनी अधीनता में तो रख सकता है, पर बहुत अधिक दूर होने के कारण आत्मसात् नहीं कर सकता।

एक आलू के ठीक बीच में ऊपर से नीचे तक, एक सलाई घुसेड़ दी जाय और आलू को उसी सलाई के चारों ओर घुमाया जाय तो वह घूमना जैसा होगा वैसा ही २४ घन्टे में पृथ्वी का एक बार घूमना होता है। हम कहते हैं पृथ्वी अपने मेरुदण्ड के चारों ओर घूम रही है। हमारे सलाईवाले आलू के साथ पृथ्वी का अन्तर इतना ही है कि उस प्रकार की कोई सलाई पृथ्वी में नहीं है। मेरुदण्ड-जैसा कोई दण्ड ही उसमें नहीं है। जिस स्थान पर सलाई रह सकती, काल्पनिक सीधी लकीर की उसी जगह को हम मेरुदण्ड कहते हैं। जैसे लट्टू। यह अपने भीतर की एक ऐसी ही खड़ी रेखा के चारों ओर घूमता है, जिसे हमने मान लिया है।

मेरुदण्ड के चारों ओर पृथ्वी के एकबार घूमने में चौबीस

घन्टे लगते हैं। सूर्य भी अपने मेरुदण्ड के चारों ओर घूमता है। इसके घूमने में जितना समय लगता है, वह जिस उपाय से जाना गया है, वह बता दूँ। खूब सबेरे जब प्रकाश से आँखें चौंधिया नहीं जातीं, उस समय सूर्य की ओर देखा जाय तो शायद मालूम होगा कि उसमें काले काले धब्बे हैं। एक-एक काले धब्बे कभी कभी इतने बड़े होकर प्रकाशित होते हैं कि सारे ग्रह-उपग्रह मिलकर भी उनके बराबर नहीं होते। छोटे छोटे धब्बों के लोप होते ज्यादा समय नहीं लगता पर बड़े बड़े धब्बे दो-दो तीन-तीन सप्ताह तक रहते हैं। दूरबीन लेकर देखने से जान पड़ता है कि ये क्रमशः दाहिनी ओर घूम रहे हैं; किन्तु असल में इन सबको अपने शरीर में लिये हुए सूर्य ही घूम रहा है। उन्हीं काले धब्बों का अनुसरण करके इस घूमने के समय का हिसाब जाना जा चुका है। प्रमाणित हुआ है कि पृथ्वी २४ घंटे में घूमती है और सूर्य २६ दिन में।

सूर्य के धब्बे सूर्य के बाहरी आवरण में विशाल गह्वर हैं। वहाँ से उत्तप्त गैस कुण्डली के आकार में चक्कर काटती हुई बाहर निकल रही है। इसका एक केन्द्र-प्रदेश है जो घोर काला है, उसका नाम है आम्ब्रा; उसके चारों ओर उससे कम काली वेष्टनी है, जिसका नाम है पेनाम्ब्रा। चारों ओर की दीप्ति की तुलना में इन्हें काला देखा जा रहा है,—वह दीप्ति अगर बंद कर दी जाती तो इनकी ज्योति भी अत्यन्त तीव्र दिखाई देती। सूर्य का जो धब्बा बहुत बड़ा है उसके आम्ब्रा

के एक किनारे से दूसरे किनारे तक का माप पचास हज़ार मील है और डेढ़ लाख मील है उसके पेनाम्ब्रा का माप।

सूर्य के इन धब्बों के घटने-बढ़ने का प्रभाव पृथ्वी पर नाना भाँति से पड़ता है। जैसे हमारी आबहवा पर। प्रायः ग्यारह वर्ष की बारी बारी से सूर्य के धब्बों का आविर्भाव देखा जाता है। परीक्षा करके देखा गया है कि वनस्पति के तने में इन धब्बेवाले वर्षों की गवाही अंकित होती रहती है। बड़े वृक्षों के तने में काटने पर उसमें प्रतिवर्ष का एक गोल चक्करदार चिह्न दिखाई देता है। ये चिह्न कहीं-कहीं तो सटे हुए हैं और कहीं-कहीं दूर-दूर। प्रत्येक चक्करदार चिह्न से जान पड़ता है कि वृक्ष प्रति-वर्ष कितना बढ़ा है। अमेरिका के एरिजोना के मरुमय प्रदेश में डाक्टर डगलस ने देखा है कि जिस साल सूर्य के काले धब्बे अधिक होते हैं उस साल तने के चिह्न अधिक चौड़े होते हैं। एरिजोना के पाइन वृक्षों के पाँच सौ वर्षों के चिह्न गिनते-गिनते देखा गया कि १६५० ई० से १७२५ तक सूर्य के धब्बों के लक्षण नहीं मिलते। अन्त में ग्रीनिच मान-यंत्र-विभाग से ख़बर लेकर उन्होंने जाना कि उन वर्षों में सूर्य के धब्बे प्रायः नहीं थे।

आजकल सूर्य के धब्बे बढ़ते जा रहे हैं। सन् १९३८ या १९३९ में इनके पूरा पूरा बढ़ जाने की बात है।

———

ग्रहलोक

यह पहले ही बताया गया है कि ग्रह किसे कहते हैं। सूर्य नक्षत्र है, पृथ्वी ग्रह, अर्थात् सूर्य से टूटकर निकल आया हुआ टुकड़ा, जिसका प्रकाश ठंडा होकर बुझ गया है। किसी किसी ग्रह में गर्मी अब भी हो सकती है, पर रोशनी नहीं है। सूर्य के चारों ओर इन ग्रहों के घूमने का रास्ता चक्र-रेखा के समान गोलाकार है। किसी का रास्ता सूर्य के निकट है और किसी-किसी का सूर्य से बहुत दूर है। किसी को सूर्य के चारों ओर घूम आने में साल भर से भी कम समय लगता है और किसी को सौ साल से भी ऊपर। जिस ग्रह को घूमने में जितना भी समय क्यों न लगे, इस घूमने का एक निश्चित नियम है, इसका व्यतिक्रम कभी नहीं होता। सूर्य-परिवार के सभी ग्रहों को, चाहे वे दूर के हों, या निकट के, छोटे हों या बड़े, पश्चिम से पूर्व की ओर प्रदक्षिणा करनी पड़ती है। इससे यह जाना जाता है कि सभी ग्रह एक ही समय धक्का खाकर सूर्य में से छिटक पड़े होंगे, इसी लिए उनका चलने का झुकाव एक ही ओर हुआ है। चलती हुई गाड़ी से उतरते समय जिस ओर गाड़ी जाती रहती है, उसी ओर शरीर में एक झोंका लगता है। गाड़ी से अगर पाँच आदमी उतरें तो उन पाँचों को एक ही ओर से

झोंका लगेगा। उसी प्रकार घूमते हुए सूर्य से निकल आते समय सभी ग्रहों का झुकाव एक ही ओर हुआ है। उनके इस चलने की प्रवृत्ति से सिद्ध होता है, वे सभी एक ही जाति के हैं, सब का झुकाव एक ही ओर है।

सूर्य के सबसे निकट है बुध ग्रह, अंग्रेज़ी में इसे मर्करी कहते हैं। यह सूर्य से साढ़े तीन करोड़ मील दूर है अर्थात् पृथ्वी जितनी दूरी पर घूम रही है उसके प्रायः तीन भाग का एक भाग। बुध के शरीर में कुछ धुँधले धब्बे दिखाई देते हैं, उसको लक्ष्य करके जाना गया है कि उसकी एक ही पीठ सूर्य की ओर है। सूर्य के चारों ओर घूम आने में उसे ८८ दिन लगते हैं। अपने मेरुदण्ड के चारों ओर घूम आने में भी उसे उतना ही समय लगता है। अर्थात् उसका दिन जितना बड़ा होता है, साल भी उतना ही बड़ा होता है। सूर्य की प्रदक्षिणा करते समय पृथ्वी के दौड़ने का वेग प्रति सेकेण्ड उन्नीस मील है। बुध ग्रह का वेग इसे मात दे गया है, उसका वेग प्रतिसेकेंड तीस मील है। एक तो उसका रास्ता छोटा है दूसरे उसमें हड़बड़ी बहुत अधिक है, इसी लिए पृथ्वी के चौथाई समय में ही उसका प्रदक्षिण समाप्त हो जाता है। बुध ग्रह के प्रदक्षिण का जो रास्ता है, सूर्य ठीक उसके केंद्र में नहीं है, ज़रा एक किनारे है। इसी लिए घूमते समय बुध कभी तो सूर्य के अपेक्षाकृत निकट आता है और कभी दूर चला जाता है।

पृथ्वी का व्यास आठ हज़ार मील का है और बुध का उसके

आधे से भी कम। यह ग्रह सूर्य के इतने निकट रहने का कारण बहुत अधिक ताप पाता है। जितनी गर्मी से पानी खौलने लगता है, बुध ग्रह के ताप की मात्रा उसके तीन-गुने से भी अधिक है। इतनी गर्मी से पानी भाप बनकर लोप हो जाता है। सिर्फ़ यही नहीं, इतने ताप में हवा के परमाणु इतनी तेज़ी से चञ्चल हो उठते हैं कि बुध ग्रह उन्हें पकड़कर रख नहीं सकता, वे देश छोड़कर शून्य में दौड़ लगाते हैं। हवा के परमाणु भगोड़े स्वभाव के हैं। पृथ्वी पर वे सेकेंड में महज़ दो मील के वेग से भागा करते हैं, इसी लिए आकर्षण के बल पर पृथ्वी उन्हें सम्हाल पाती है। किन्तु यदि किसी कारण से ताप बढ़ जाता, तो वे प्रतिसेकेन्ड सात मील के वेग से भाग पड़ते फिर तो पृथ्वी भी अपनी हवा को अधिक समय तक काबू में न रख सकती।

जो विज्ञानी लोग विश्व जगत् के अरायजनवीश हैं उनका एक प्रधान कार्य है, ग्रह-नक्षत्रों का माप ठीक करना। इस काम में मामूली तराज़ू और बाँट से काम नहीं चलता, इसी लिए कौशल-पूर्वक उनसे ख़बर वसूल की जाती है। यही बात समझाकर कहता हूँ। कल्पना करो कि लुढ़कता हुआ गोला आकर अचानक एक पथिक को धक्का मार गया, पथिक दस हाथ दूर जा गिरा। कितने बड़े वज़न का गोला धक्का मारे तो आदमी इतनी दूर तक विचलित हो सकता है, यह नियम अगर मालूम हो तो इस दस हाथ के माप पर से हिसाब करके गोले का वज़न

निकाल लिया जा सकता है। एक बार अचानक इसी प्रकार का हिसाब करने का सुयोग मिलने से बुध ग्रह का वज़न निकालना आसान हो गया। यह सुयोग एक धूमकेतु के कारण मिला। यह बात बताने के पहले यह बता रखना ज़रूरी है कि धूमकेतु-गण किस जाति के ज्योतिष्क हैं। ग्रहगण सूर्य के अपने हैं, किन्तु धूमकेतुगण एकदम बिराने। वे बहुत दूर बाहर से अचानक सूर्य के इलाक़े में आ पड़ते हैं। किसी प्रकार एक बार सूर्य के चारों ओर घूम करके तत्काल विरागी होकर निकल पड़ते हैं।

धूमकेतु शब्द का अर्थ है, धुएँ की पताका। उसके चेहरे को देखकर ही यह नाम दिया गया है। उसका मुण्ड गोल है और उसके पीछे एक उज्ज्वल लंबी पताका फहरा रही है। साधारणतः यही उसका आकार है। यह पताका अत्यन्त सूक्ष्म वाष्प की बनी होती है। वह इतना सूक्ष्म है कि पृथ्वी कभी-कभी इसे मर्दन करती हुई निकल गई है फिर भी हम अनुभव न कर सके। उसका मुण्ड उल्का-पिण्ड से बना है। बीच-बीच में कोई-कोई धूमकेतु सूर्य के राज्य में घुस आते हैं और फिर बाहर नहीं निकल पाते, सूर्य के शासन में बद्ध होकर अनुचरों के दल में भरती हो जाते हैं। तब उन्हें भी यथा-नियम सूर्य की प्रदक्षिणा करनी होती है, प्रदक्षिणा का वह मार्ग और समय पक्की तौर पर निश्चित हो जाता है।

सौरपरिवार के इसी प्रकार के एक नये संबंधी धूमकेतु के

प्रदक्षिण मार्ग में एक बार व्याघात उपस्थित हुआ। जब वह बुध की कक्षा के पास से गुजर रहा था, उसी समय बुध के साथ खींचतान के कारण उसका रास्ता गड़बड़ा गया। रेल गाड़ी जब पटरी से हट जाती है तो फिर से ठेलकर उसे पटरी पर चढ़ा दिया जाता है, पर उससे टाइम टेबुल का निर्दिष्ट समय बीत जाता है। यहाँ भी ऐसा ही हुआ। धूमकेतु जब अपने रास्ते पर लौटा तो तब तक उसका समय उत्तीर्ण हो चुका था। धूमकेतु को जिस परिमाण में हिला देने में बुध ग्रह के जितने आकर्षण का जोर लगा था, उस पर से हिसाब लगाया जाने लगा। जिसका वज़न जितना होता है उतनी ही शक्ति से वह खींचा करता है, यह जानी हुई बात है, इसी नियम पर से बुध ग्रह का वज़न निकाला गया। देखा गया कि बुध ग्रह के समान इक्कीस बटखरे चढ़ाये जायँ, तब कहीं वज़न पृथ्वी के बराबर होगा।

बुध ग्रह के रास्ते पर ही शुक्र ग्रह के प्रदक्षिण की पारी आती है। सूर्य को एकबार घूम आने में उसे २२५ दिन लगते हैं, अर्थात् हमारे साढ़े सात महीने का उसका साल है। उसके मेरुदण्ड पर चक्कर काटने का वेग क्या है, इस विषय के तर्क की अब भी समाधा नहीं हुई। यह ग्रह साल में एकबार सूर्यास्त के बाद पश्चिम क्षितिज पर दिखाई देता है, उस समय इसे सन्ध्या-तारा कहते हैं, फिर यही ग्रह एक समय सूर्योदय के पहले पूर्व ओर उदय होता है, उस समय उसे शुक तारा कहते

हैं। किन्तु असल में यह तारा है ही नहीं; खूब चमकने-दमकने के कारण जनता के पास से इसने तारा का ख़िताब पाया है। इसका आयतन पृथ्वी से ज़रा-सा कम है। इस ग्रह का मार्ग पृथ्वी के मार्ग की अपेक्षा और भी तीन करोड़ मील सूर्य के निकट है। यह भी कम नहीं है। यथोचित दूरी बचाकर चलता है, फिर भी इसके भीतर की ख़बर अच्छी तरह मालूम नहीं। इसलिए नहीं कि यह सूर्य के प्रखर प्रकाश के आवरण से ढका है। बुध सूर्य के प्रकाश से ढका हुआ है; किन्तु शुक्र अपने ही घने मेघ से ढका है। विज्ञानियों ने हिसाब करके देखा है कि इस ग्रह का उत्ताप पृथ्वी से प्रायः ९० डिग्री अधिक होना चाहिए। इतने उत्ताप से जल का कोई रूपान्तर नहीं होता, इसी लिए यह आशा की जा सकती है कि वहाँ जलाशय और मेघ दोनों का अस्तित्व है।

अब तक शुक्र ग्रह में आक्सिजन या जलीय वाष्प का कोई लक्षण नहीं पाया गया। उसके ऊपर के घने मेघावरण से भीतर की अवस्था ढकी हुई है। मेघ के ऊपरी सतह से जितना कुछ अन्दाज़ किया जाता है उससे प्रमाणित होता है कि उसके आक्सिजन की पूँजी बहुत ही कम है। वहाँ जिस गैस का स्पष्ट प्रमाण पाया जाता है, वह है आंगारिक गैस। मेघ के ऊपरी सतह पर उसकी मात्रा पृथ्वी की उस गैस से हज़ारों गुना अधिक है। पृथ्वी पर इस गैस का प्रधान उपयोग पेड़ पौधों के प्राण धारण में होता है अन्यान्य जीव-जन्तुओं के प्राण-धारण

के लिए आक्सिजन का व्यवहार होता है। प्राण-धारण के इन दो ज़रूरी पदार्थों में से केवल एक ही शुक्र पर है। यह आश्चर्य की बात है कि शुक्र पर जलीय वाष्प का पता नहीं चलता। तो फिर सोचना पड़ता है कि शुक्र का घना मेघ किस चीज़ का है। सम्भव यह है कि मेघ के ऊँचे स्तर पर जल ठंडा होकर इतना जम गया है कि उससे वाष्प नहीं निकलता। शुक्र पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य के निकट है, अतएव मान लिया जा सकता है कि ग्रह के ऊपरी सतह के उत्ताप से समुद्र से अत्यधिक परिमाण में भाप उठा करता होगा और उसी से ऐसा घन मेघ जम गया होगा।

सौरमंडली में शुक्र ग्रह के बाद ही पृथ्वी का आसन है। पहले और ग्रहों की बात ख़तम करके बाद में पृथ्वी की चर्चा की जायगी।

पृथ्वी के बाद की पंगत में मंगल-ग्रह का स्थान है। यह लाल रंग का ग्रह और सब ग्रहों की अपेक्षा पृथ्वी के सबसे निकट है। इसका आयतन पृथ्वी के आठवें हिस्से के बराबर है। सूर्य के चारों ओर घूम आने में इसे ६८७ दिन लगते हैं जिस रास्ते में यह सूर्य की प्रदक्षिणा कर रहा है वह बहुत-कुछ अंडे की तरह का है; इसी लिए घूमते समय एकबार वह सूर्य के पास आता है और फिर दूर चला जाता है। अपने मेरुदण्ड के चारों ओर घूमने में इसे पृथ्वी से सिर्फ़ आध घंटा अधिक समय लगता है इसी लिए वहाँ के दिन-रात हमारी पृथ्वी की

दिन-रात से कुछ बड़े हैं। जिस परिमाण में इस ग्रह के ऊपर वस्तु है वह पृथ्वी की वस्तु मात्रा का एक दशमांश है, इसी लिए आकर्षण की शक्ति भी उसी परिमाण में कम है।

सूर्य के आकर्षण से मंगल-ग्रह को जिस रास्ते चलना चाहिए था, उसकी अपेक्षा उसकी चाल में थोड़ा-सा फ़र्क़ है। पृथ्वी के आकर्षण के कारण ही इसकी यह दशा है। वज़न के अनुसार आकर्षण के ज़ोर से पृथ्वी मंगल-ग्रह को जितना विच-लित कर सकी है, उसी पर से हिसाब करके पृथ्वी का वज़न ठीक किया गया है। इसी सिलसिले में सूर्य की दूरी भी जान ली गई है। क्योंकि मंगल को सूर्य भी खींच रहा है। सूर्य कितनी दूर रहेगा तो दोनों आकर्षणों का काट-छाँट होकर मंगल का इतनी दूर विचलित होना संभव है, यह बात गणित करके निकाली जा सकती है। मंगल बहुत बड़ा ग्रह नहीं है, उसका वज़न भी अपेक्षाकृत कम है, इसी लिए उसी मुताबिक़ आकर्षण का ज़ोर न होने से आशंका थी कि वह हवा को खो देगा। किन्तु सूर्य से दूर होने के कारण वह इतना उत्ताप नहीं पाता जिससे परमाणु गर्म होकर ग़ायब हो जायँ। किन्तु यह बात अब भी स्थिर नहीं हो सकी है कि उसकी हवा में किस-किस वाष्प की मिलावट है।

सूर्य से मंगल की दूरी पृथ्वी की दूरी से अधिक है, इसलिए इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह ग्रह ठंडा है। दिन के समय विषुवत प्रदेश में शायद कुछ गर्मी रहती हो; किन्तु रात को

निःसन्देह बर्फ़ जमने से भी अधिक ठंड पड़ती है। बर्फ़ की टोपी पहने हुए उसके मेरु-प्रदेश की तो बात ही क्या है।

पंडितों में मंगल-ग्रह के संबंध में बहुत दिनों तक एक तर्क चलता रहा है। एक बार एक इटली-वासी विज्ञानी ने मंगल में लंबी-लंबी लकीरें देखीं और निश्चय किया कि ग्रह के वासिन्दों ने निश्चय ही मेरु-प्रदेश से बर्फ़-विगलित पानी पाने के लिए ये लंबी-लंबी नहरें निकाली हैं। फिर किसी किसी विज्ञानी ने कहा कि यह आँखों की ग़लती है। आजकल ज्योतिष्क-लोक की ओर मनुष्य ने कैमरा चलाया है। कैमरे से खींची हुई तस्वीर में भी काली लकीरें दिखी हैं। किन्तु वे कृत्रिम नहरें ही हैं और बुद्धिमान जीवों की ही कृतियाँ हैं, यह बात बिल्कुल अन्दाज़े पर कही गई है। अवश्य ही इस ग्रह पर प्राणी का रहना असंभव नहीं है, क्योंकि यहाँ हवा और जल है।

दो उपग्रह मंगल-ग्रह के चारों ओर घूमा करते हैं, एक को एक चक्कर लगाने में ३० घंटे लगते हैं और दूसरे को ७॥ घंटे, अर्थात् मंगल-ग्रह के एक दिन-रात में वह उसे प्रायः तीन बार घूम आता है। हमारे चाँद की अपेक्षा ये प्रदक्षिण का कार्य बहुत जल्दी ख़तम कर लेते हैं।

मंगल और बृहस्पति ग्रह के बीच में अनेक ख़ाली जगह देख-कर पंडित लोगों को संदेह हुआ और वे खोज में लग गये। पहले बहुत छोटे-छोटे चार ग्रह दिखाई दिये। फिर देखा गया कि वहाँ बहुत हज़ार ग्रह-खंडों की भीड़ है। ये झुंड बाँधकर

सूर्य के चारों ओर घूम रहे हैं। उनका नाम ग्रहिका रख लिया जाय। अंग्रेज़ी में कहते हैं asteroids। जिसका दर्शन पहले मिला उसका नाम सीरिस (ceres) रखा गया। इसका व्यास चार सौ पचीस मील है। ईरोस (eros) नामक एक ग्रहिका है, सूर्य-प्रदक्षिण के समय वह पृथ्वी के जितना निकट आती है, उतना और कोई ग्रह नहीं आता। ये ग्रहिकायें इतनी छोटी-छोटी हैं कि इनके भीतर की कोई भी खबर हमें नहीं मिलती। इन सबका मिलकर जितना वज़न है वह पृथ्वी के वज़न का एक चतुर्थांश भी नहीं है। मंगल से भी कम है, नहीं तो मंगल के चलने के रास्ते में आकर्षण कर कुछ गड़बड़ी पैदा कर सकतीं।

ग्रहिकाओं को किसी समूचे ग्रह का खंड ही मान लिया जा सकता है। अपने भीतरी गोलमाल से या किसी पड़ोसी ग्रह के आघात से एक दिन इनके घर में विप्लव का समय गुज़रा है। वही इतिहास-विस्मृत दुर्योग अपने अख्यात कूड़ा-कर्कटों को सूर्य के चारों ओर घुमाकर किसी प्रकार मर्यादा की रक्षा कर रहा है।

इन ग्रहिकाओं के प्रसंग में और एक दल की बात बताना चाहिए। ये भी बहुत छोटे-छोटे हैं और झुंड बाँधकर एक निर्दिष्ट रास्ते में सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। ये उल्का पिंड हैं। पृथ्वी पर निरन्तर इनकी वर्षा जारी है, धूल के कणों के साथ इनका जो राख मिल जाता है, वह नितान्त कम नहीं है।

पृथ्वी के ऊपर यदि हवा का चँदोवा न टँगा होता तो इन च शत्रुओं के आक्रमण से हमारी रक्षा न हो सकती।

दिन हो या रात, उल्कापात कुछ न कुछ होता ही रहता है। लेकिन विशेष-विशेष महीने की विशेष-विशेष तिथियों को उल्काओं की बौछार अधिक होती है। २१वीं अप्रैल, ९, १० और ११ वीं अगस्त १२, १३, १४ और २७वीं नवम्बर की रात को इस उल्कापात की आतिशबाज़ी देखने की चीज़ है। तिथि-क्षण का इस प्रकार का बँधा-सधा नियम देखकर विज्ञानी लोग इसका कारण खोजने लगे।

बात यह है कि उनका एक विशेष मार्ग है। किन्तु ग्रहों की तरह वे अकेले नहीं चलते। वे द्युलोक के दल-बद्ध टिड्डियों की जात के हैं। लाख-लाख की संख्या में भीड़ किये हुए एक ही रास्ते चलते हैं। वर्ष के विशेष-विशेष दिन को पृथ्वी का रास्ता ठीक उन्हीं जगहों पर पहुँच जाता है जहाँ उनकी जमात रहती है। पृथ्वी का आकर्षण वे सम्हाल नहीं सकते। निरन्तर इनकी झड़ी होती रहती है, जो पृथ्वी की धूल में मिल जाती है। कभी-कभी बड़े-बड़े टुकड़े भी आ गिरते हैं और फट-फटाकर चारों ओर तहस-नहस कर देते हैं। सूर्य के इलाक़े में अनधिकार प्रवेश करनेवाले धूमकेतुओं के दुर्भाग्य के ये निदर्शक हैं। ऐसा भी सुना जाता है कि युवावस्था में जब पृथ्वी के अन्तर में ताप अधिक था, उस समय अग्नि के उत्पात से पृथ्वी के भीतर की सामग्री इतने ऊपर छिटक गई थी कि

उसके टुकड़े पृथ्वी का आकर्षण पार करके आज भी सूर्य के चारों ओर चक्कर काट रहे हैं, बीच-बीच में अवसर पाते ही पृथ्वी उन्हें खींच लेती है। विशेष-विशेष दिन को इन्हीं उल्काओं की मानो न्यौछावर सी होती रहती है।

इन अति क्षुद्रों के बादवाले रास्ते पर ही अति वृहत् वृहस्पति ग्रह है।

इस वृहस्पति ग्रह के पास से कोई पक्की ख़बर की आशा करने के पहले दो बातें लक्ष्य करने की हैं। सूर्य से उसकी दूरी और उसका आयतन। पृथ्वी की दूरी ९ करोड़ मील से कुछ ऊपर है और वृहस्पति की दूरी ४८ करोड़ ३० लाख मील, अर्थात् पृथ्वी की दूरी से पाँच गुने से भी अधिक। पृथ्वी सूर्य की जितनी गर्मी पाती है, वृहस्पति उसका सिर्फ़ सत्ताईसवाँ हिस्सा पाता है।

एक समय ज्योतिषियों ने अन्दाज़ किया था कि वृहस्पति ग्रह पृथ्वी के समान इतना ठंडा नहीं हो गया है, उसके पास अपनी गर्मी का संचय काफ़ी अधिक है। उसके वायुमण्डल में जो चञ्चलता सदा दिखाई देती है उसका कारण उसके भीतर का ही ताप है। पर जब वृहस्पति की ताप-मात्रा का हिसाब लगाना सम्भव हुआ तब देखा गया कि ग्रह बहुत ठंडा है। उसके ताप की मात्रा बर्फ़ जमने की ठंडक के और २०० फारेनहाइट डिग्री नीचे है। इतनी अधिक ठंडक में वृहस्पति के ऊपर जलीय वाष्प रह ही नहीं सकता। परीक्षा करके उसके

वायुमण्डल में दो गैसों का पता पाया गया। एक अमोनिया, जिसकी तीव्र गन्ध नौसादर में चौंका देती है, और एक आलेया गैस (Methane), जो मैदान में राहगीरों का राह भुलाने में नामवरी हासिल कर चुकी है। नाना युक्तियों से अभी तक यह स्थिर किया गया है कि वृहस्पति का शरीर कठोर है, प्रायः पृथ्वी के समान ही घन। इसके ऊपर १६ हज़ार मील तक बर्फ के स्तर जमे हुए हैं। इस बर्फ-पुंज के ऊपर ६००० हज़ार मील तक वायु का स्तर है। इतने बड़े पुञ्जीभूत वायु के प्रबल दबाव से हाइड्रोजन और हीलियम के सिवा अधिकांश गैस ही तरल हो जाती हैं। इस वायव्य और तरलपने के कारण सदा असामञ्जस्य घटता रहता है और फलस्वरूप वायुमण्डल सर्वदा चंचल बना रहता है,—यह अनुमान सच जान पड़ता है।

वृहस्पति विशाल-काय ग्रह है, उसके व्यास की लंबाई प्रायः ९० हज़ार मील है, पृथ्वी के ग्यारह गुना।

सूर्य की प्रदक्षिणा करने में वृहस्पति को प्रायः बारह वर्ष लग जाते हैं। दूर रहने के कारण उसका कक्ष-मार्ग निस्सन्देह पृथ्वी के मार्ग की अपेक्षा बहुत बड़ा है, पर वह चलता भी है काफ़ी धीरे धीरे। पृथ्वी जहाँ एक सेकेंड में १९ मील चलती है, तहाँ वह केवल आठ मील ही चलता है। किन्तु उसका स्वावर्तन अर्थात् अपने मेरुदण्ड के चारों ओर घूमना तेज़ी के साथ होता है। इतने विशाल देह को घुमाने में उसे केवल दस घंटे लगते हैं। हमारे एक अहोरात्र में उसके दो दिन और दो

रातें बीत जाती हैं और फिर भी कुछ बाक़ी रह जाता है।

वृहस्पति के परिवार में दस उपग्रह हैं। पृथ्वी के चाँद की अपेक्षा इनके प्रदक्षिणा करने का वेग कहीं अधिक तेज़ है। पहले चार उपग्रह तो हमारे चाँद के ही समान बड़े हैं, उन पर भी अमावस्या, पूर्णिमा और क्षय-वृद्धि होती रहती हैं।

पहले-पहल वृहस्पति के चन्द्र-ग्रहण से ही यह स्थिर हुआ कि प्रकाश एक सेकेंड में १८६००० मील के वेग से दौड़ा करता है। गणनानुसार जिस समय वृहस्पति का चन्द्र-ग्रहण घटना चाहिए, प्रत्येक बार उसके कुछ देर बाद दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि उसका प्रकाश हमारी आँखों तक पहुँचने में कुछ देरी करता है। एक निर्दिष्ट परिमाण समय लेकर प्रकाश चलता है क्योंकि ऐसा अगर न होता तो ग्रहण लगने के साथ ही साथ वह दिखाई देता। पृथ्वी से इस उपग्रह की दूरी माप कर ग्रहण की मियाद ख़त्म होने के बाद उसके प्रत्यक्ष होने में कितनी देर लगी है, यह लक्ष्य करके पहले-पहल प्रकाश की गति का निर्धारण हुआ।

वृहस्पति का अपना प्रकाश नहीं है, इस बात का प्रमाण उसके दस उपग्रहों के ग्रहण के समय मिलता है। विचार कर देखो कि ग्रहण होता कैसे है। किसी एक अवसर पर जब सूर्य पीछे पड़ जाता है और ग्रह, प्रकाश को रोककर, उसके सामने आ जाता है और उसके भी सामने उसी की छाया में उपग्रह

होता है तभी सूर्य का प्रकाश न मिलने के कारण उपग्रह पर ग्रहण लग जाता है। किन्तु मध्यवर्ती ग्रह के पास यदि अपना प्रकाश होता तो वह उपग्रह को आलोकित कर सकता और ग्रहण हो ही नहीं सकता। हमारे चाँद के ग्रहण के विषय में भी यही बात लागू है। ज्योतिहीन पृथ्वी जब चन्द्रमा के सामने से सूर्य को आड़ में छिपा लेती है, तो उस समय वह चन्द्रमा को छाया ही दे सकती है, प्रकाश नहीं।

वृहस्पति के बाद की पंक्ति में शनि ग्रह है।

यह ग्रह सूर्य से ८८ करोड़ ६० लाख मील दूर है। सूय की एक प्रदक्षिणा करने में इसे २९॥ वर्ष लगते हैं। शनि का वेग वृहस्पति से भी कम है—एक सेकेंड में केवल ६ मील। वृह-स्पति को छोड़कर सौरजगत् के अन्य ग्रहों की अपेक्षा आकाश में यह बहुत बड़ा है; इसका व्यास पृथ्वी के व्यास से प्रायः ९ गुना है। पृथ्वी से नौ गुना बड़ा होकर भी अपनी धुरी पर एक चक्कर लगाने में उसे पृथ्वी के आधे से भी कम समय लगता है। इतने ज़ोर से घूमने के कारण उस वेग के दबाव से इसका आकार कुछ चपटा-सा हो गया है। इतना बड़ा इसका आकार है फिर भी इसका वज़न पृथ्वी से सिर्फ ९५ गुना अधिक है। इतना हल्का होने के कारण ही विशाल-काय होकर भी पृथ्वी की अपेक्षा इसका आकर्षण अधिक नहीं हो सका। एक मेघ का आवरण इसे घेरे हुए है, जिसका आकार बीच-बीच में बदलता दिखाई देता है।

शनि के दस उपग्रह हैं। उनमें जो सबसे बड़ा है वह आयतन में बुध ग्रह से भी बड़ा है। यह प्रायः ८ लाख मील दूर रहता है और इसकी प्रदक्षिणा १६ दिन में समाप्त होती है।

शनि ग्रह की वेष्टनी की वर्णच्छटा की परीक्षा करके देखा गया है कि इसका जो अंश ग्रह के निकट रहता है उसका चलन-वेग ग्रह के दूरवर्ती अंशों की अपेक्षा बहुत अधिक है। यह वेष्टनी अगर अखण्ड चक्र की भाँति होती तो घूमनेवाले पहिये के नियमानुसार वेग बाहर की ओर ही अधिक होता। किन्तु शनि ग्रह की वेष्टनी अगर खण्ड-खण्ड वस्तुओं की बनी हो तो इन वस्तुओं के जो दल ग्रह के पास होंगे वे ही आकर्षण के ज़ोर से अधिक तेज़ी से घूमेंगे। इन लाख-लाख टुकड़े-उपग्रहों के अतिरिक्त दस बड़े-बड़े उपग्रह अलग अलग रास्ते में शनि ग्रह की प्रदक्षिणा कर रहे हैं।

किस प्रकार इस ग्रह के चारों ओर झुंड के झुंड छोटे टुकड़ों की सृष्टि हुई, इस संबंध में विज्ञानियों का जो मत है उसी का कुछ अंश लिखा जा रहा है। ग्रह के प्रबल आकर्षण में पड़कर कोई-कोई उपग्रह अपना गोल आकार नहीं बचा रख सकते, उनका चेहरा आख़िरकार बहुत-कुछ अंडे के समान हो जाता है। अन्त में एक ऐसा समय आता है जब अधिक बर्दाश्त न कर सकने के कारण उपग्रह टूटकर दो खंड हो जाता है। ये दोनों छोटे टुकड़े और भी टूटते रहते हैं, इस प्रकार एक ही उपग्रह से लाख-लाख टुकड़ों का हो जाना असंभव नहीं है।

चाँद की भी एक दिन यही दशा होने का है। विज्ञानी लोग कहते हैं कि प्रत्येक ग्रह को एक अदृश्य मंडली का बेड़ा घेरे हुए है, इसे खतरे का घेरा कहते हैं। इसके भीतर आ पड़ते ही उपग्रहों का शरीर फूल उठता है, पहले वह अंडे की तरह लंबा-सा आकार धारण करता है फिर टूटने लगता है। आखिर-कार ये टुकड़े झुंड बाँधकर ग्रह के चारों ओर चक्कर लगाने लगते हैं। विज्ञानियों के मत से वृहस्पति का प्रथम उपग्रह इस ख़तरे के घेरे के पास आ गया है, और कुछ दिन बाद इस घेरे में घुसते ही उसके टुकड़े हो जायँगे। उस समय शनि ग्रह की तरह वृहस्पति को भी चारों ओर से एक उज्ज्वल वेष्टनी घेर लेगी। शनि के चारों ओर जो वेष्टनी है उसकी सृष्टि के संबंध में पंडितों का अनुमान है कि शनि का एक उपग्रह घूमते-घूमते इस ख़तरे के घेरे में आ घुसा था। नतीजा यह हुआ कि उपग्रह टूट-कर खंड-खंड हो गया और आज भी इस ग्रह की परिक्रमा कर रहा है।

चाँद पृथ्वी के ख़तरे के घेरे से बहुत दूर है, इसी लिए उसमें जो परिवर्त्तन हुए हैं वे बहुत अधिक नहीं हैं। पृथ्वी के आकर्षण के वेग से वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता आ रहा है, इसके बाद जब इस घेरे के इलाके में प्रवेश करेगा तो टुकड़े-टुकड़े हो जायगा और ये टुकड़े पृथ्वी-ग्रह को घेरकर शनि ग्रह की नकल करते रहेंगे; उस समय चाँद पर भी 'शनि की दशा' होगी।

शनि सूर्य से वृहस्पति की अपेक्षा कहीं अधिक दूर है—इसी

लिए ठंडा भी बहुत ज़्यादा है। इसके बाहर का वायुमण्डल बहुत कुछ वृहस्पति के समान है, केवल अमोनिया का उतनी अधिक मात्रा में होना नहीं पाया गया; आलेयागैस (Methane) का परिमाण शनि पर वृहस्पति की अपेक्षा अधिक है। शनि यद्यपि आयतन में बहुत अधिक है तथापि उसका वज़न उतना ही भारी नहीं। वृहस्पति के समान इसका वायुमंडल भी गहरा होना चाहिए, क्योंकि इसके आकर्षण को तरह देकर हवा के भागने का कोई उपाय नहीं है। इसमें हवा का परिमाण अत्यधिक होने के कारण ही इसका औसत वज़न इसके आकार-प्रकार की तुलना में इतना कम है। इसके ऊपर प्रायः ६००० मील तक बर्फ़ जमा हुआ है—और उसके ऊपर १६००० मील तक हवा है।

शनि ग्रह के बाद की पंक्ति में यूरेनस नामक ग्रह है जिसके वहाँ होने की ख़बर नई ही मिली है।

इस ग्रह के संबंध में कुछ विशेष विवरण जानना अब भी संभव नहीं हुआ। इसका व्यास पृथ्वी से ६४ गुना है। सूर्य से १७८ करोड़ २८ लाख मील दूर रहकर चार मील प्रति-सेकेंड की चाल से ८४ वर्ष में एकबार उसकी परिक्रमा कर रहा है। आकार तो इसका इतना विशाल है, फिर बहुत दूर होने के कारण बिना दूरबीन के इसे देखा ही नहीं जाता। जिस पदार्थ से यह ग्रह बना है, वह पानी से कुछ ही घना है, इसी लिए पृथ्वी से कई गुना बड़ा होने पर भी इसका वज़न पृथ्वी के सिर्फ़ पंद्रह गुना ही है।

१० घं० ४५ मि० में यह ग्रह एकबार अपनी धुरी पर घूम रहा है, चार उपग्रह अपने-अपने रास्ते में निरन्तर इसकी परि-क्रमा कर रहे हैं।

यूरेनस के आविष्कार के कुछ ही दिन बाद पंडितों ने इस ग्रह का बेहिसाबी चाल-चलन देखकर निश्चय किया कि इस ग्रह ने किसी और के आकर्षण में पड़ कर पंथ का नियम तोड़ा है। खोजते-खोजते वह ग्रह भी निकला। उसका नामकरण हुआ नेपच्यून।

सूर्य से इसकी दूरी २७९ करोड़ ३५ लाख मील है और प्राय: १६४ वर्ष में यह सूर्य की एक प्रदक्षिणा करता है। इसका व्यास प्राय: ३३००० मील का अर्थात् यूरेनस से कुछ बड़ा है। दूरबीन से एक छोटी-सी हरी थाली की तरह दिखाई देता है। इसका एक उपग्रह २ लाख २२ हज़ार मील दूर रहकर ५ दिन २१ घंटे में इसके चारों ओर एकबार घूम आता है। उपग्रह की दूरी और इसके आयतन पर से हिसाब लगाकर निश्चय किया गया है कि इसका वस्तु पदार्थ पानी से कुछ भारी है और वज़न में प्राय: यूरेनस के बराबर है। यह बात अब भी एकदम निश्चित नहीं हुई कि इस ग्रह को अपनी धुरी पर एकबार घूमने में कितना समय लगता है।

नेपच्यून के आकर्षण से यूरेनस को जिस नये रास्ते पर चलना चाहिए था, हिसाब करके देखा गया कि यूरेनस ठीक उस रास्ते पर नहीं चल रहा है। इससे यह समझा गया

कि नेपचून के सिवा भी इस ग्रह के गतिपथ के बाहर कोई और एक ज्योतिष्क वर्त्तमान है। सन् १९३० में एक नया ग्रह और निकल आया। इसका नाम प्लूटो रखा गया है। यह ग्रह इतना छोटा और इतनी दूर है कि दूरबीन की सहायता से भी यह बड़ी कठिनता से दिखाई देता है। कैमरा से चित्र खींच-कर इसका अस्तित्व निःसन्देह सिद्ध कर दिया गया है। यह ग्रह ही सूर्य से सबसे अधिक दूरी पर है, इसी लिए यह प्रकाश और गर्मी इतनी थोड़ी मात्रा में पा रहा है कि हम उसकी अवस्था की कल्पना भी नहीं कर सकते।

लगभग ३६५ करोड़ मील की दूरी से ढाई सौ वर्षों में यह ग्रह सूर्य की एक प्रदक्षिणा समाप्त करता है।

प्लूटो ग्रह बहुत छोटा है, इसलिए उसके आकर्षण का वेग भी बहुत कम है। नतीजा यह हुआ है कि वह अपनी हवा को भी नहीं सम्हाल सकता। वह इसके हाथ से जाती रही है। इसकी ताप-मात्रा २३० डिग्री सेंटीग्रेड से भी नीचे होगी। इतनी सर्दी में अत्यन्त दुरन्त गैस भी तरल, यहाँ तक कि ठोस हो जाती है। वहाँ अंगारिक गैस, आमोनिया, नाईट्रोजन, प्रभृति वायव्य पदार्थ भी जमकर बर्फ़ बन गये हैं और उनसे निश्चय ही ग्रह ढक गया है। किसी-किसी का मत है कि सौर-लोक की अन्तिम सीमा पर कई छोटे-छोटे ग्रह बिखरे हुए हैं, प्लूटो उन्हीं में से एक है। लेकिन इस मत के लिए कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिला है, कभी मिलेगा भी कि नहीं, कौन

जाने। आज की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली दूरबीन यदि उस दूरत्व की यवनिका (पर्दा) उठा सके तभी संशय का समाधान होगा।

भूलोक

अन्य ग्रहों के आकार-प्रकार और चलने-फिरने के सम्बन्ध में बहुत ही कम ख़बरें इकट्ठी की जा सकी हैं, अकेली पृथ्वी ही एक ऐसा ग्रह है जिसके शरीर की गठन-रीति ठीक तौर पर बहुत कुछ जानी जा सकी है। गैसीय अवस्था पार करके जब से उसका शरीर कठोर हुआ है तभी से उसके शरीर में इतिहास के नाना चिह्न अंकित होते चले आये हैं।

पृथ्वी के ऊपर का स्तर किसी चीज़ से ढका न होने के कारण शीघ्र ही ठंडा होकर कड़ा हो गया और भीतर का स्तर गर्म होने के कारण वहाँ तरल और गैसीय पदार्थ ही रह गये। दूध की मलाई ठंडी होते-होते जिस प्रकार सिकुड़ जाती है उसी प्रकार पृथ्वी की ऊपरी सतह भी ठंडी होते-होते सिकुड़ने लगी। सिकुड़ने पर दूध की मलाई जिस मात्रा में ऊबड़-खाबड़ हो जाती है, उसकी तरफ़ हमारा ध्यान ही नहीं जाता। किन्तु सिकुड़ी हुई पृथ्वी की असमानता ऐसी मामूली नहीं है कि उसे हँसकर उड़ा दिया जाय। चूँकि नीचे का स्तर इस असमानता को ढोने योग्य पक्का नहीं हुआ था इस लिए अच्छा आधार न मिलने के कारण ऊपर का कड़ा स्तर दब-धँसकर

ऊँचा-नीचा होता रहा, इससे पहाड़-पर्वत दिखाई दिये। बूढ़े आदमी के माथे का चमड़ा सिकुड़कर जिस प्रकार बलि पड़ जाती है उसी प्रकार मानो ये पृथ्वी के ऊपरी चमड़े की बलियाँ हैं। सारी पृथ्वी की वृहत् गंभीरता की तुलना में ये पहाड़ मनुष्य के चेहरे के बलिचिह्न से कम ही हैं, अधिक नहीं।

प्राचीन युग की पृथ्वी के सिकुड़े हुए ऊबड़-खाबड़ स्तर में कहीं गड्ढे हो गये और कहीं पहाड़ निकल आये। गड्ढे तब भी पानी से भरे नहीं थे। क्योंकि उस समय पृथ्वी की गर्मी के कारण पानी भी भाप के रूप में ही था। धीरे-धीरे मिट्टी ठंडी हुई, वाष्प पानी हो गया। उसी पानी से भरकर गड्ढे समुद्र हो गये।

पृथ्वी की बहुत सी पानी की भाप तो तरल हो गई, किन्तु हवा की प्रधान गैसें वैसी ही रह गईं। उन्हें तरल करना सहज नहीं। क्योंकि जितनी सर्दी में वे तरल होतीं उतनी सर्दी से पानी जमकर बर्फ़ हो जाता और पृथ्वी बर्फ़ के कवच से आच्छादित हो रहती। इस औसत परिमाण की गर्मी-सर्दी से आक्सिजन, नाईट्रोजन प्रभृति हवा के गैसवाले पदार्थ सहज ही चल-फिर रहे हैं और हम साँस लेकर जी रहे हैं।

पृथ्वी के भीतर की ओर का संकुचन अब भी एकदम बन्द नहीं हो गया है। उसी के हिलने के कारण अचानक कहीं नीचे की जगह कुछ हट जाती है तो ऊपर का कड़ा आवरण टूटकर उसे दबा देता है, इस प्रकार पृथ्वी की ऊपरी सतह को हिला

देता है और भूकम्प हो जाता है। फिर किसी किसी स्थान पर टूटे हुए दबाव से नीचे का तप्त तरल पदार्थ ऊपर उछल आता है।

पृथ्वी की भीतरी अवस्था जानने के लिए जितना खोदना ज़रूरी है, उतने नीचे तक खुदाई अब भी नहीं हुई। कोयले की खान खोजने के लिए मनुष्य पृथ्वी के जितना नीचे उतरा है वह एक मील से बहुत अधिक नहीं है। इससे केवल इतनी ही ख़बर मिली है कि जितना ही पृथ्वी के नीचे की ओर जाया जाता है उतना ही, एक निर्दिष्ट मात्रा में, ताप बढ़ता जाता है। और भी नीचे कितनी गर्मी है, यह बात ज्वालामुखी पहाड़ों का ताण्डव देखकर समझी जा सकती है। किन्तु इन तप्त उत्सों की गहराई भी पृथ्वी की मोटाई की तुलना में बहुत ही कम है। भूकम्प से पृथ्वी के भीतर की बहुत-सी ख़बरें मनुष्य को मालूम हुई हैं।

मिट्टी के नीचे कहीं उथल-पुथल हो तो वहाँ से तरंगों के चक्र, एक के बाद दूसरे, आगे बढ़ते रहते हैं। सीस्मोग्राफ (seismograph) अर्थात् भूकम्प-लिपि नामक एक यंत्र निकला है। उसके पट पर इन ऊँची-नीची तरंगों के चिह्न अंकित होते हैं, उससे उनके काँपने का वेग जान पड़ता है।

भिन्न-भिन्न देश की प्रयोगशालाओं में यह यंत्र रखा गया है। जिस समय जिस सीस्मोग्राफ में भूकम्प की रेखा अंकित हुई है, उस पर से हिसाब करके देखा जाता है कि पृथ्वी के कठिन स्तर

के भीतर से कितने वेग से कम्पन चला रहा है। पृथ्वी का समूचा भीतरी हिस्सा यदि एक ही पदार्थ से बना होता तो इस कम्पन वेग के मापने में अन्तर न पड़ता। लेकिन फर्क़ पड़ते देखा गया है। पृथ्वी की गहराई में कम्पन की तरंगें ऊपरी सतह की अपेक्षा अधिक ज़ोर से चलती हैं। असल में पृथ्वी के भिन्न-भिन्न स्तरों में भूकम्प का मान भिन्न-भिन्न होता है। तरल या गैसीय पदार्थ के भीतर से कम्पन की तरंगें जिस प्रकार फैलती हैं, कठिन पदार्थ से होकर उस प्रकार नहीं फैल पातीं।

समूची पृथ्वी अगर जलमय होती तो उसका वज़न जो कुछ होता उससे पाँचगुना भारी जल-स्थल-मयी इस पृथ्वी का वज़न है। उसके ऊपरी सतह का पत्थर जल से तिगुना घना है। केवल ऊपरी दबाव से उनका भार बढ़ गया हो सो बात नहीं है, वहाँ के वस्तु-पुञ्ज का भार स्वभावतः ही अधिक है। भूकम्प की गवाही से जाना जाता है कि पृथ्वी के केन्द्रस्थल में दो हज़ार मील तक उत्तप्त तरल पदार्थ है—जिसका अधिकांश गला हुआ लोहा है, ऐसा अन्दाज़ किया गया है। इस तरल पदार्थ को घेरे हुए पत्थर का जो स्तर है वह पानी से चारगुना भारी है।

जो हवा पृथ्वी को घेरे हुए है, उसका ७८ फी सदी नाईट्रोजन और २१ फी सदी आक्सिजन है। हाईड्रोजन तथा और कई गैसें अत्यन्त मामूली मात्रा में हैं। आक्सिजन बड़ी मिलनसार गैस है, लोहे के साथ मिलकर मोर्चा लगा देती है, अंगार

पदार्थ के साथ मिलकर आग जला देती है—इस प्रकार निरन्तर वायु-मण्डल में उसका बहुत हिस्सा ख़र्च होता रहता है। इधर पेड़ पौधे हवा के अंगाराम्ल गैस से अपने मतलब का अंगार वसूल करके उसका आक्सिजनवाला हिस्सा हवा को लौटा देते हैं। ऐसा न होता तो अंगाराम्ल गैस से ही पृथ्वी भर जाती और आदमी साँस लेने की भी हवा न पा सकता।

आसमान में बहुत ऊँचाई तक हवा में विशेष परिवर्तन नहीं होता। और भी अधिक ऊँचे जाने पर जो गैसें मिलकर हवा बनती हैं, उनका बहुत कुछ वहाँ नहीं पहुँच पाता है। ख़ूब सम्भव, सबसे हल्की दो गैसें, अर्थात् हीलियम और हाईड्रोजन से ही वहाँ की हवा बनी है।

बराबर घनत्व कम होते जाने के कारण हवा बहुत ऊपर तक उठ गई है। बाहर से पृथ्वी पर जो उल्का-पिण्ड गिरा करते हैं। वे पृथ्वी की हवा से रगड़ खाकर जल उठते हैं उनमें से अधिकांश का यह जलना १२० मील ऊपर दिखाई देता है। इसलिए यह मान लेना होगा कि उसके और भी ऊपर बहुत दूर तक हवा है, जिसके भीतर से आते आते अन्त में ये इस जलन की अवस्था को प्राप्त होते हैं।

सूर्य का प्रकाश नौ करोड़ मील पार करके पृथ्वी तक आता है। ग्रह-वेष्टनकारी आकाश की शून्यता को पार करके आते समय तेज का बहुत अधिक क्षय नहीं होता। अर्थात् दस हज़ार डिग्री गर्मी लेकर वह वायुमण्डल के सीमान्त देश

में पहुँचता है। इतने प्रचण्ड धक्के से वहाँ की हवा के परमाणु निश्चय ही चूर्ण-विचूर्ण हो जाते हैं, एक भी परमाणु पूरा नहीं रहता। हवा के सर्वोच्च अंश में टूटे हुए परमाणुओं का जो स्तर रचित हुआ है उसे एफ् २ (F 2) नाम दिया गया है।

वहाँ ख़र्च होने से बची हुई सूर्य की किरणें नीचे के घनतर वायुमण्डल पर आक्रमण करती हैं, वहाँ भी टूटे परमाणुओं के स्तर का उद्भव होता है, इसे एफ् १ (F 1) स्तर नाम दिया गया है।

और भी नीचे और भी घनी हवा में सूर्य-किरणों के आघात से पंगु बने हुए परमाणुओं का एक स्तर है जिसे ई (E) स्तर कहते हैं।

सूर्य-किरणों की बैंगनी-पार की रश्मि का बल बहुत कुछ ख़र्च हो जाता है, वह निःस्व होकर नीचे की हवा तक बहुत थोड़ी मात्रा में पहुँच पाती है। यही हमारे लिए गनीमत है। अगर वह अधिक आती तो सम्हालना मुश्किल हो जाता।

सूर्य किरणों के सिवा और भी कई 'काले पहाड़' दूर से हवा को अदृश्य गदाघात करने के लिए आया करते हैं। जैसे उल्का, इनकी बात पहले ही बताई गई है। इनकी रगड़ से तीन हज़ार से लेकर सात हज़ार फारेनहाइट डिग्री तक का ताप जाग पड़ता है; इससे बैंगनी-पार के प्रकाश के तीक्ष्ण बाण तरकस से निकल पड़ते हैं और हवा के परमाणुओं के देह पर बरसकर उन्हें जलाकर छार-खार कर देते हैं। इसके

सिवा एक और रश्मि के बरसने की बात पहले ही बताई गई है। यह कस्मिक रश्मि है। संसार में यही सबसे प्रबल शक्ति का वाहन है।

पृथ्वी की हवा में आक्सिजन, नाईट्रोजन आदि गैसों के कोटि-कोटि परमाणु भरे पड़े हैं। वे अत्यन्त तेजी के साथ निरन्तर चक्कर मारते रहते हैं, आपस में धक्कामुक्की और ठेलाठेली तो चल ही रही है। जो कण हल्के हैं, उनके दौड़ने का वेग अधिक होता है। सारे दल का जो वेग होता है उसकी अपेक्षा स्वतंत्र छिटके हुए परमाणु का वेग बहुत अधिक होता है। इसी लिए पृथ्वी के बाहरी आँगन की सीमा से हाईड्रोजन के खुचरे अणु प्रायः ही पृथ्वी का आकर्षण काटकर बाहर को भाग जाते हैं। लेकिन आक्सिजन और नाईट्रोजन के अणु-कणों की गति दल के बाहर कभी भी अधीर भगोड़ों की तेज़ी नहीं पाती। इसी लिए पृथ्वी के वायुमंडल में इनकी कमी नहीं पड़ती। केवल हाईड्रोजन ही, जो पृथ्वी की तरुणावस्था में उसकी सबसे बड़ी गैसीय सम्पत्ति था, धीरे-धीरे अपना बहुत कुछ खो चुका है।

बड़े-बड़े पंखवाले पक्षी पंखों को यों ही खुला रखकर देर तक आसमान में बहते-से रहते हैं, इससे जान पड़ता है कि हवा में इतना घनत्व ज़रूर है कि वह इन पक्षियों का आधार बन सकता है। असल में, कठिन और तरल पदार्थों की भाँति हवा का भी वज़न पाया जाता है। मिट्टी के ऊपर कई मील तक हवा है, इस हवा का दबाव एक फ़ीट लंबे और इतने ही चौड़े

पदार्थ पर प्रायः २७ मन से भी अधिक पड़ता है। एक साधारण आदमी के शरीर पर इसका दबाव प्रायः ४०० मन से अधिक पड़ता है। फिर भी हम उसका अनुभव नहीं कर पाते। जैसे ऊपर से वैसे ही नीचे से, जैसे दायें से वैसे ही बायें से, समान भाव से हवा का दबाव और धक्का लग रहा है, इसी लिए हवा का भार हमें कष्ट नहीं देता।

पृथ्वी का वायुमंडल अपने आवरण से दिन के समय सूर्य की गर्मी को बहुत-कुछ रोक रखता है, और रात के समय महा-शून्य की प्रबल सर्दी को भी बाधा पहुँचाता है। चाँद के शरीर पर हवा की ओढ़नी नहीं है, इसी लिए वह सूर्य की गर्मी से खौलते हुए पानी के समान गर्म हो जाता है। और ग्रहण के समय पृथ्वी ज्यों ही उस पर अपनी छाया विस्तार करती है त्यों ही देखते-देखते वह ठंडा हो जाता है। हवा होती तो वह गर्मी को रोक रखती। चाँद को केवल यही अभाव नहीं है, हवा न होने के कारण वह एकदम गूँगा है, कहीं भी ज़रा सा शब्द होने का उपाय नहीं। विशेष भाव से हिलने पर हवा में नाना आयतन की सूक्ष्म तरंगें उठती हैं, वे ही हमारे कान के भीतरी पर्दे पर नाना भाँति के कम्पन का आघात करती हैं, और यही तरंगें नाना भाँति की आवाज़ बनकर हमारे कर्णों में गोचर होती रहती हैं। हवा का एक और भी काम है। वह फ़राश की तरह सूर्य की उग्र किरणों को बिछाकर फैला देती है, नहीं तो जहाँ धूप पड़ती सिर्फ़ वहीं पर प्रकाश हो सकता,

छाया नाम की कोई चीज़ ही न होती। तीव्र प्रकाश की बग़ल में ही घोर अन्धकार होता। वृक्ष की चोटी की धूप से आँखें चौंधिया उठतीं और नीचे के तलदेश में निविड़ काला अन्धकार हुआ रहता। घर की छत पर दोपहरी की धूप दमकती रहती और घर के भीतर होती, अमावस्या की घोर अर्धरात्रि। दिया जलाने की बात सोचना भी ग़लत होता क्योंकि पृथ्वी की हवा में जो आक्सिजन गैस है, उसी से सब चीज़ें जला करती हैं। जब हवा ही नहीं होती तो आक्सिजन भी न होता और आक्सिजन न होता तो दिया तो क्या कोई भी चीज़ नहीं जल सकती।)

हम लोग प्रश्वास से हवा का आक्सिजन खींचते हैं। उसके अणु हमारे प्राणवस्तु के अणु के साथ मिलकर धीरे-धीरे उसे अदृश्य ज्वाला से जलाते रहते हैं। इसी लिए हम जब तक जीते रहते हैं, तब तक हमारा ख़ून गर्म रहता है।

हवा को यौगिक पदार्थ नहीं कह सकते, असल में वह मिलावटी पदार्थ है। उसमें नाना गैसें जमा हुई हैं, पर वे मिलकर एक नहीं हो गईं। हवा में जिस मात्रा में आक्सिजन है, उससे तिगुना नाईट्रोजन है। यदि केवल आक्सिजन ही होता तो हमारा प्राणवस्तु जल-जलकर कब का समाप्त हो गया होता। यह प्राणवस्तु कुछ अंश में जलता है और कुछ अंश में जल नहीं पाता। इसी लिए हम दो आतिशय्य के बीच में रहकर जी सकते हैं।

सारा वायुमंडल पानी से भीजा हुआ-सा है। मेघ में जितना जल रहता है, उससे कहीं अधिक रहता है हवा में। हमारा सारा शरीर थोड़ा-थोड़ा करके इस पानी को सोख रहा है। अत्यन्त सूखी हवा में चमड़ा सूखकर जब फटता रहता है तब इसका प्रमाण मिलता है।

ऊपर के वायुमंडल के टूटे हुए परमाणुओं के वैद्युत-स्तर की बात पहले ही कह चुका हूँ। इसके सिवा सहज हवा के भी दो स्तर हैं। इसका जो पहला स्तर पृथ्वी के सबसे अधिक नज़दीक है उसका वैज्ञानिक नाम है ट्रोपोस्फियर (troposphere), हिंदी में इसे क्षुब्ध स्तर कह सकते हैं। इसकी चौड़ाई पाँच से लेकर दस मील से अधिक नहीं है। सारे वायुमंडल के माप की तुलना में इस क्षुब्ध स्तर की ऊँचाई बहुत ही कम है, लेकिन हवा के समस्त पदार्थों का प्रायः नब्बे प्रतिशत इसी में है। इसी लिए अन्य स्तरों की अपेक्षा यह स्तर बहुत घना है। पृथ्वी से एकदम सटा हुआ होने के कारण उसकी गर्मी की छूत उसे लगी ही रहती है। उस उत्ताप के बढ़ने-घटने से हवा यहाँ निरन्तर दौड़ धूप करती रहती हैं। इसी लिए केवल इसी स्तर में आँधी और वर्षा होती रहती है। इसके और ऊपर जो स्तर है उसमें पृथ्वी की गर्मी आँधी-तूफ़ान की रफ्तनी नहीं कर पाती। इसी लिए वहाँ की हवा शान्त है। पंडितों ने इसका नाम दिया है स्ट्रैटोस्फीयर (stratosphere), हिंदी में स्तब्ध स्तर कहा जा सकता है।

आदि सूर्य से जिस प्रकार पृथ्वी निकल आई है उसी प्रकार वाष्प-देही आदिम पृथ्वी से चाँद निकल आया है, नियम दोनों जगह एक ही है। इसके बाद करोड़ों वर्ष बीत गये, पृथ्वी ठंडी होकर कड़ी हो गई, चाँद भी ऐसा ही हो गया है।

२ लाख ३९ हज़ार मील दूर रहकर २७ दिन और ८ घंटे में चंद्रमा पृथ्वी की एक परिक्रमा कर रहा है। इस परिक्रमा के समय वह एक ही पीठ पृथ्वी की ओर फिरा रखता है। इसका व्यास प्रायः २१६० मील लंबा है और इसका उपादान जल से प्रायः ३॥ गुना भारी है। अन्यान्य ग्रह-नक्षत्रों की तुलना में पृथ्वी से इसकी दूरी कुछ ही कम है, इसलिए हम इसे इतना उज्ज्वल और बड़ा देखते हैं। अस्सी चाँदों को अगर एक साथ तौला जाय तो उनका वज़न पृथ्वी के बराबर होगा। दूरबीन से चाँद को देखने से स्पष्ट ही दिखता है कि वह पृथ्वी के पदार्थों के समान ही पदार्थों से बना है। उसके ऊपर बड़े-बड़े गह्वर और बड़े-बड़े पर्वत हैं।

पृथ्वी के आकर्षण से ही चंद्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूम रहा है। एक चक्कर लगाने में उसे एक महीने से कुछ कम समय लगता है। औसतन् उसकी चाल एक सेकेंड में आध मील से ज़्यादा नहीं है। पृथ्वी इतनी देर में २० मील दौड़ जाती है। अपने मेरुदण्ड के चारों ओर घूमने में उसे एक

महीने के बराबर ही समय लगता है। उसके दिन और वर्ष एक ही समान धीर मंथर वेग से चलते हैं।

चाँद के वज़न पर से हिसाब लगाकर देखा गया है कि यदि किसी चीज़ का वेग प्रतिसेकेण्ड डेढ़ मील हो तो वह चाँद के आकर्षण से निकलकर बाहर निकल जा सकता है। चाँद जिस परिमाण में धूप तापता है उससे उसकी तपी हुई पीठ पर हवा इतना गर्म हो-उठी होगी कि वह अपनी हवा के परमाणुओं को रोक नहीं सका होगा, इसी लिए वे सब निकल पड़े होंगे। जहाँ हवा का दबाव नहीं है, वहाँ पानी ख़ूब शीघ्र ही भाप बन जाता है। भाप होने के साथ ही साथ पानी के परमाणु गर्मी से चंचल होकर चंद्रमा का बंधन छिन्न करके बाहर चले गये होंगे। जहाँ जल भी नहीं, वायु भी नहीं, वहाँ किसी का जीवन रह सकता है, यह बात हम लोगों की जानी हुई नहीं है। चाँद को एक पिण्डीभूत मरुभूमि कह सकते हैं।

रात को जिन्हें हम ताराओं का टूटना कहते हैं वे तारा नहीं हैं, यह बात आज किसी को समझानी नहीं पड़ेगी। पृथ्वी के आकर्षण से ये उल्का पिंड-लाख-लाख की संख्या में दिन-रात गिर रहे हैं। उनमें के अधिकांश हवा में रगड़ खाकर जलकर राख होकर गिर जाते हैं। जो कुछ बड़े आकार के हैं, वे जलते-जलते मिट्टी पर आ गिरते हैं, बम की तरह फट जाते हैं, और चारों ओर जो पाते हैं उसे ही जलाकर भस्म कर देते हैं।

चाँद पर भी यह उल्का-वृष्टि हो रही है। उन्हें रोक और

जलाकर राख कर सके, ऐसी हवा वहाँ थोड़ी-सी भी नहीं है। इसी लिए वे अबाध भाव से चाँद के सारे शरीर पर ढेला मार रहे हैं। वेग भी कम नहीं है, सेकेंड में प्रायः ३० मील; इसी लिए चोट भी ख़ूब करारी कर रहे हैं।

चाँद के बड़े-बड़े गह्वरों की उत्पत्ति अग्नि-उत्स से ही है। जो गला हुआ पदार्थ और राख उससे निकल आया था, हवा न होने के कारण इतना युग बीत जाने पर भी उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। राख से ढका होने के कारण सूर्य का प्रकाश आवरण को भेदकर बहुत नीचे नहीं जा पाता, और नीचे की गर्मी भी ऊपर नहीं आ पाती।

चाँद के जिस ओर सूर्य का प्रकाश पड़ता है उस तरफ़ की गर्मी प्रायः खौलते हुए पानी के समान है और जिधर नहीं पड़ता उस ओर की सर्दी बर्फ़ की ठंडक से भी प्रायः २५० डिग्री नीचे की होती है। चंद्र-ग्रहण के समय जब पृथ्वी की छाया चाँद पर पड़ती है तो उसका उत्ताप कुछ ही मिनटों में प्रायः ३४६ डिग्री कम हो जाता है।

हवा न होने के कारण और राख के आवरण को भेद करके सूर्य की गर्मी भीतर प्रवेश न कर सकने के कारण चाँद के पास किसी प्रकार का संचित उत्ताप है ही नहीं; इसी लिए इतनी शीघ्र उसकी गर्मी कम हो जाती है। इन सब प्रमाणों से कहा जा सकता है कि चाँद का प्रायः सब स्थान ज्वालामुखी पहाड़ की राख से ढका हुआ है।

चाँद पृथ्वी के निकट का उपग्रह है। उसके आकर्षण-शक्ति की प्रत्यक्ष उपलब्धि समुद्रों में होती है, जहाँ ज्वार भाटा की लहरें आया करती हैं, और सुना है कि हमारे शरीर की जूड़ी और वात रोग भी उसके आकर्षण से जाग पड़ते हैं। वात के रोगी अमावस्या और पूर्णिमा से बहुत डरते हैं।

आदि काल में पृथ्वी पर जीवन का कोई चिह्न नहीं था। प्रायः सत्तर-अस्सी करोड़ वर्ष तक उस पर नाना रूप में तेज का उत्पात चला था। कहीं ज्वालामुखी तप्त वाष्प का फुफकार छोड़ रहा था, तरल धातु उगल रहा था और गर्म जल का फव्वारा उड़ा रहा था और कहीं नीचे से धक्का खाकर भूमितल काँप रहा था, फट रहा था और भूखण्ड धँस रहा था।

पृथ्वी के आरंभ से डेढ़ सौ करोड़ वर्ष जब बीत गये तब अशान्त आदि युग की सिरफुड़ौवल बहुत-कुछ कम हो गई। ऐसे ही समय में सृष्टि की सबसे आश्चर्य-जनक घटना दिखाई दी। किस प्रकार और कहाँ से प्राण और क्रमशः मन का उद्भव हुआ, इसका पता नहीं चलता। उसके पहले पृथ्वी पर सृष्टि के कारखाने में प्राणहीन पदार्थों का उथल-पुथल और सर्जन-भंजन चल रहा था। उसका उपकरण था मिट्टी, पानी, लोहा, पत्थर वगैरह, और इनके साथ थीं आक्सिजन, हाईड्रोजन इत्यादि कई गैसें। नाना भाँति के प्रचण्ड अघात से उन्हीं को उलट-पुलट और जोड़-जाड़कर नदी, पहाड़ और समुद्र की रचना और अदल बदल जारी थी। ऐसे ही समय में विराट् जीवनहीनता के

भीतर प्राण, और उसके साथ मन, दिखाई दिया। इनके पूर्ववर्ती पदार्थों के साथ इनकी कोई समानता नहीं।

नक्षत्रों का प्रथम आरंभ जिस प्रकार नीहारिका से हुआ उसी प्रकार पृथ्वी पर जीव-लोक का जो प्रकाश हुआ उसे प्राण की नीहारिका कह सकते हैं। वह एक प्रकार का अपरिस्फुट छितराया हुआ घनी लाला की भाँति अंगविभाग-हीन, प्राण-पदार्थ था जो उन दिनों के ईषदुष्ण समुद्र-जल पर बहा करता था। उसका नाम रखा गया है प्रोटोप्लाज्म। जिस प्रकार नक्षत्र अग्नेय वाष्प में दाना बाँधने लगता है उसी प्रकार इसमें भी एक एक पिण्ड जमा हुए जिनके बनने में अनेक युग लग गये। इनकी एक श्रेणी का नाम दिया गया है अमीबा। अमीबा आकार में अत्यन्त छोटा होता है, दूरबीन से ही दिखाई देता है। गँदले पानी में इन्हें पाया जा सकता है। इनके हाथ, मुख या पैर नहीं हैं। यह आहार की खोज में घूमते फिरते हैं। देह-पिण्ड का एक अंश फैलाकर पैर का काम करा लेता है, ख़ुराक के सम्पर्क में आने पर उसे सारे शरीर से ढककर आत्मसात् कर लेता है। सारा शरीर ही उसका मुख है और सारा शरीर ही पाकयंत्र। अपने शरीर का ही भाग करके उसकी वंश-वृद्धि होती है। उन्हीं दिनों इसी अमाबा की और एक शाखा दिखाई दी, जिस शाखा के जीवों ने घोंघों की तरह देह के चारों ओर आवरण बना लिया। समुद्र में इनके करोड़ करोड़ सूक्ष्म देह हैं। इनका यही देह-

पंक जम-जमकर पृथ्वी पर स्थान स्थान पर खड़िया मिट्टी के पहाड़ बन गये हैं।

विश्व-रचना के मूलतम उपकरण परमाणु हैं, ये ही परमाणु अचिन्तनीय विश्व-नियमों के वशवर्ती हो अत्यन्त सूक्ष्म जीव कोष के रूप में संहत हुए। प्रत्येक कोष सम्पूर्ण और स्वतंत्र है, उनमें से प्रत्येक के भीतर एक अपनी ही आश्चर्यजनक शक्ति है जिसके द्वारा बाहर से स्वाद लेकर अपने को पुष्ट करते हैं, अनावश्यक को त्याग देते हैं और अपने आप को बहु-गुणित कर सकते हैं। यह जो बहु-गुणित करने की शक्ति है उसके भीतर से—मृत्यु से होती हुई—प्राण की धारा प्रवाहित हो रही है।

प्राणलोक में यह जीवाणु-कोष अकेला होकर दिखाई दिया। इसके बाद ये जितना ही संघबद्ध होते गये उतना ही जीव-जगत् में उत्कर्ष और वैचित्र्य संभव होने लगा। जिस प्रकार करोड़ों नक्षत्रों के समवाय से एक-एक नीहारिका बनी हैं उसी प्रकार करोड़ों जीव-कोषों के समावेश से एक-एक देह है। वंशावली के भीतर से यह देह-जगत् एक प्रवाह सृष्टि करके नये-नये रूपों में अग्रसर हो रहा है। हम लोग अब तक नक्षत्रलोक और सूर्यलोक की चर्चा कर आये हैं, उनकी अपेक्षा कई गुना अधिक आश्चर्यजनक है यह प्राणलोक। उद्दाम तेज को शान्त करके यह क्षुद्रायतन ग्रह रूप पृथ्वी जिस अनतिक्षुब्ध परिणति को प्राप्त हुई है, केवल इसी अवस्था में प्राण और उसके सहचर मन का

आविर्भाव संभव हुआ है। यह बात जब सोचते हैं, तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि संसार की यह परिणति ही श्रेष्ठ परिणति है। यद्यपि प्रमाण नहीं है और प्रमाण पाना आपाततः असंभव भी है, तो भी मन यह बात नहीं मानना चाहता कि विश्व-ब्रह्माण्ड में जीव-धारण-योग्य चैतन्यप्रकाशक अवस्था केवल इस पृथ्वी पर ही घटी है और इस हिसाब से पृथ्वी ही समस्त जगत्-धारा का एकमात्र व्यतिक्रम है।

उपसंहार

एक बार जगत् के सबसे बड़े आश्चर्य का संवाद लेकर करोड़ों वर्ष पहले तरुण पृथ्वी पर एक छोटी सी जीवकोष की कणा दिखाई दी, जो हमारी आँखों के लिए अदृश्य थी। वह कितनी बड़ी महिमा का इतिहास लेकर आई थी और फिर भी किस गोपन भाव के साथ। उसका अनुपम कलामय सृष्टिकार्य देह-देह में नई-नई परीक्षाओं से गुजरता हुआ निरन्तर चलता आ रहा है। योजना करने की, संशोधन करने की, अत्यन्त जटिल कर्मतंत्र के उद्भावन और संचालन करने की बुद्धि प्रच्छन्न भाव से इस कोष में कहाँ छिपी हुई है और किस प्रकार इनके भीतर से अपने आप को सक्रिय बना रही है और उत्तरोत्तर अभिज्ञता का संचय कर रही है—सोचने पर इसका कुछ किनारा नहीं मिलता। अति मृदुल वेदनाशील जीवकोषों का समूह वंशानुक्रम से जीव देह के नाना अंग-प्रत्यङ्ग में यथोचित ढंग से समष्टि बाँध रहे हैं और पता नहीं, किस प्रकार अपने ही भीतर के उद्यम से देह-क्रिया का ऐसा आश्चर्यजनक कर्तव्य-विभाग कर रहे हैं। पाकयंत्रों के जो कोष हैं, उनके काम एक तरह के हैं और मस्तिष्क के जो कोष हैं, उनके काम एकदम

दूसरी तरह के हैं। और फिर भी जीवाणु-कोष सभी मूलतः एक ही जाति के हैं। किसकी आज्ञा से इनके दुरूह कार्यों का बँटवारा हुआ और किसने इनके विचित्र कार्यों का मिलन संभव करके स्वास्थ्य नामक एक सामञ्जस्य का विधान किया। जीवाणु-कोष की दो प्रधान क्रियायें हैं, बाहर से ख़ूराक संग्रह करके जीवित रहना और बढ़ते रहना, तथा अपने ही समान जीवों को उत्पन्न करके वंश-धारा को चलाते जाना। कहाँ से शुरू से ही इस आत्मरक्षा और वंशरक्षा के जटिल प्रयास ने इन पर निर्भर किया।

अप्राण-विश्व में जो सब घटनायें घटी हैं उसके पीछे सारे जड़ जगत् की भूमिका है। मन इन घटनाओं को जानता है, इस जानने के पीछे मन की कोई विश्व-भूमिका कहाँ है। पत्थर, लोहा और गैसों का आपस में जानने का तो कोई सम्पर्क नहीं है। इस दुःसाध्य प्रश्न को लेकर एक विशेष युग में प्राण और मन इस पृथ्वी पर आये—अति क्षुद्र जीवकोष को वाहन बनाकर।

पृथ्वी की सृष्टि के इतिहास में इनका आविर्भाव अचिन्तनीय है। लेकिन जो कुछ है उन सबके साथ कोई सम्बन्धहीन एकान्त आकस्मिक अभ्युत्थान को हमारी बुद्धि मानना नहीं चाहती। हम इस जड़ विश्व के साथ मनोविश्व के मूल-गत ऐक्य की कल्पना सर्वव्यापी तेज या ज्योति पदार्थ के रूप में कर सकते हैं। बहुत दिनों के बाद विज्ञान ने आविष्कार किया है

कि ऊपर-ऊपर से देखने से जो स्थूल पदार्थ ज्योतिहीन दिखाई देते हैं, उनमें भी प्रच्छन्न रूप में नित्य ही ज्योति की क्रिया चल रही है। उसी महाज्योति का सूक्ष्म विकास प्राण में है और और भी सूक्ष्मतर प्रकाश है चैतन्य में और मन में। विश्व-सृष्टि के आदि में जब महाज्योति के सिवा और कुछ नहीं पाया जाता तो कहा जा सकता है कि चैतन्य में उसी का प्रकाश है। जड़ से लेकर जीव तक में, एक-एक करके पर्दा उठते उठते मनुष्य में आकर इस महा चैतन्य का आवरण मोचन करने की साधना चल रही है। जान पड़ता है चैतन्य की इस मुक्ति की अभिव्यक्ति ही सृष्टि का अन्तिम परिणाम है।